• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुमां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १५ | गौराब्द ४८३, मास—केशव २३, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, ३० अग्रहायण, सम्वत् २०२६, १६ दिसम्बर १९६९ | संख्या ६-७

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीकौरवेन्द्र-पुरस्त्रीणां संजल्पमय-स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १।१०।२१-३०)

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमिलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥२१॥

जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे द्वारकापुरी जानेके लिए प्रस्तुत हुए, तब हस्तिनापुरकी कुलीन रमणियां आपसमें कहने लगीं—

सत्त्वादि तीनों प्राकृत गुणोंकी सृष्टि या उत्पत्तिके पूर्वसे वर्त्तमान, प्रलयकालमें उपाधियुक्त सत्त्वादि शक्ति अव्यक्त प्रकृतिमें विलीन हो जानेके कारण अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके समष्टि-अन्तर्यामी

जिन परमात्मास्वरूप ईश्वर या गर्भोदशायी विष्णुमें जीवगण लीन होकर अवस्थान करते हैं, वे ही प्रपञ्चातीत अपने स्वरूपसे अद्वितीय, अनादि, आदिपुराण पुरुष इन्हीं श्रीकृष्णके अंशविशेष हैं ॥२१॥

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
अनात्मरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

ये ही भगवान् अपने अच्युतरूपसे अवस्थित होकर सृष्टिप्रवाह अनादि होनेके कारण पुनः जीवोंके भोगकी यातना के लिए जड़ीय नामरूपहीन जीवात्माके नाम, रूप आदिकी सृष्टि करने को इच्छा कर अपनी कालशक्तिप्रेरित, अपने अंशभूत जीवोंको मोहित करनेवाली (अतएव सृष्टि करने की अभिलाषा रखनेवाली) बहिरङ्गा माया-शक्तिमें अन्तर्यामीरूपसे अधिष्ठित रहते हैं और कर्मादि के प्रवर्त्तनके लिए वेदादि शास्त्रोंकी सृष्टि किया करते हैं ॥२२॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥

इस संसारमें इन्द्रियोंको संयत कर एवं प्राणवायुको निरुद्ध कर ज्ञानी साधुलोग भक्तिद्वारा उत्पन्न तीव्र उत्कण्ठाके साथ निर्मल भक्तियोगसे जिनका परम पद या स्वरूप दर्शन करते हैं, वे ही परम पुरुष या विष्णु ये ही हैं । हे सखि ! ये ही सभी प्राणियोंकी बुद्धिका शोधन करनेमें समर्थ हैं; योगादि द्वारा यह बात सम्भवपर नहीं है या इनके लिए हमारी ज्ञान-बुद्धि नाशपूर्वक दूरमें चले जाना और हमारी इन्द्रियोंके अगोचर हो जाना उचित नहीं है । अतएव इनके साथ जाना ही हमारा कर्त्तव्य है ॥२३॥

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

हे सखि ! सभी वेदशास्त्रोंमें और रहस्यपूर्ण आगम शास्त्रोंमें रहस्यवादी व्यासादि ऋषियों ने जिनके परम मधुर पवित्र कथाओं का सर्वदा गान किया है, वे ही अद्वितीय परमेश्वर अपनी इच्छा से लीलाविलासके लिए इस विश्वकी सृष्टि, पालन, संहार आदि क्रियाएँ करते हैं, किन्तु उसमें स्वयं लिप्त नहीं होते, वे ही हमारे सामने प्रत्यक्ष वर्त्तमान हैं ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥

हे सखि ! जब तमोबुद्धिसम्पन्न राजा लोग अधर्मका अवलम्बन कर अपनी जीविका निर्वाह करने लगते हैं, तब ये ही भगवान् श्रीकृष्ण विश्वका पालन और कल्याण करने के लिए प्रति युग-युगमें नाना प्रकारके अवतारोंसे प्रकट होकर ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञता, भक्तवात्सल्य और अलौकिक लीला आदि अपने नाना प्रकारके अद्भुत विक्रमोंका प्रकाश किया करते हैं ॥२५॥

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल—
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अहो ! क्या आश्चर्य है ! पृथ्वीमें एकमात्र यदुकुल (यहाँ नन्द महाराजके वंशज और वसुदेवजीके वंशज दोनोंके लिए ही प्रयुक्त है) ही श्लाघनीय और धन्यातिधन्यतम है । अहो ! मथुरा पुरी या मधुवनका तीर्थ सबसे पुण्यतम तीर्थ है क्योंकि यहीं पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने जो लक्ष्मी-पति हैं, स्वयं जन्मग्रहण कर यदुवंश को पवित्र कर लीलाविहार द्वारा इस मथुरापुरी (या व्रजमंडल) का माहात्म्य बढ़ाया है ॥२६॥

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥

अहो ! क्या आश्चर्य है ! द्वारकापुरी स्वर्गकी कीर्तिका भी तिरस्कार कर रही है । अतएव स्वर्गसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ है । इस पृथिवी की पवित्र कीर्तिको भी बढ़ा रही है । क्योंकि द्वारकापुरी या व्रजमण्डलकी प्रजा अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको, जो आत्माके भी आत्मा हैं, जो बड़े प्रेम से मन्द-मन्द मुस्कराते हुए अपनी अलौकिक कृपादृष्टिकी वर्षा करते रहते हैं, उन्हें नित्य निरन्तर दर्शन करती रहती है ॥२७॥

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु--
--र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

हे सखि ! जिस अधरामृतकी अनिवार्य आशासे व्याकुलचित्त व्रजकी गोपियाँ सम्मोह प्राप्त होती रहती हैं, उसी अधरामृतका जो नारियाँ पुनः-पुनः पान करती रहती हैं, श्रीकृष्ण द्वारा पाणि-ग्रहण की हुई ऐसी उन सभी पत्निका सौभाग्य प्राप्त रमणियोंने निश्चय ही पूर्व पूर्व जन्मोंमें भगवान् श्रीकृष्णको नाना प्रकारके व्रतों, स्नानादि, होम-पूजा आदि द्वारा भली प्रकारसे आराधना की है ॥२८॥

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे
प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा
याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥

स्वयंवर-सभाओंमें अत्यन्त बलवान शिशुपाल, जरासन्ध आदि अगणित राजाओंको पराजित कर इन श्रीकृष्णने केवल अपने असीम प्रभाव बलद्वारा ही प्रद्युम्न, साम्ब और आम्बकी माताएँ रुक्मिणी, जाम्बवती, नाग्नजिती आदि श्रेष्ठ राजकन्याओंका हरण किया था । पृथ्वीदेवीके पुत्र नरकासुरका अनायास ही वध कर अन्यान्य सहस्र-सहस्र राजपुत्रियोंका हरण कर उनके साथ प्रीतिपूर्वक पाणिग्रहण किया था ॥२९॥

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं
निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।

यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति--

--र्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

अहो ! इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा विवाहित इन सभी नारियोंने ही नितान्त अपवित्र, स्वतन्त्रता रहित, अबला स्त्री जातिको सम्पूर्ण रूपसे धन्य कर दिया है। क्योंकि इनके स्वामी प्राणेश्वर कमल-लोचन श्रीकृष्णने अपने परम मधुर व्यवहारद्वारा इनके चित्तको सम्पूर्णरूपसे आकर्षण कर इनके लिए दूसरी नारियोंके लिए दुष्प्राप्य पारिजात-वृक्ष और अन्यान्य वस्तुएं संग्रह कर इनके हृदयमें अत्यन्त असीम मात्रामें आनन्द बढ़ाया है। अपनी प्राणप्रियतमा पत्नियोंके गृहसे एक क्षणके लिए भी वे कदापि अन्यत्र नहीं जाते; अर्थात् सर्वदा ही उनके निकट वास करते हैं ॥३०॥

॥ इति श्रीकौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां संजल्पमय-स्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीकौरवेन्द्रपुरस्त्री गण द्वारा कथित संजल्पमय-स्तोत्र समाप्त ॥

भक्तों का बाह्यापेक्षा त्याग

मुग्धं मां निगदन्तु नीतिनिपुणा भ्रान्तं मुहुर्वैदिका
मन्दं बान्धवसञ्चया जडधियं मुक्तादराः सोदराः ।
उन्मत्तं धनिनो विवेकचतुराः कामं महादाम्भिकं
मोक्तुं न क्षमते मनागपि मनो गोविन्दपादस्पृहाम् ॥

श्रीमाधव नामक भक्तप्रवर कविराज कहते हैं—नीतिनिपुण व्यक्ति लोग यदि मुझको मुग्ध (पागल) कहते हैं तो खूब कह लें। वेदों के यज्ञादि क्रिया-कलाप का बहुत आदर करने-वाले व्यक्ति मुझको बारम्बार भ्रान्तचित्तयुक्त कहते हैं, तो कहने दो। सब बन्धु-बान्धव लोग मन्द या खोटी बुद्धियुक्त कहते हैं तो कोई हानि नहीं। सब सहोदर भाई आदर त्याग कर यह जड़बुद्धि है—ऐसा कहते हैं तो कहा करें। धनी लोग मुझे उन्मत्त कहते हैं तो कोई बात नहीं। विवेकचतुर व्यक्ति मुझे यदि महादाम्भिक कहते हैं तो कहें; मुझे इन सब लोगोंकी टीका-टिप्पणीकी कोई परवाह नहीं है। मेरा मन कदापि श्रीगोविन्द भगवान् श्रीकृष्णकी पदारविन्द-प्राप्तिकी लालसा त्याग करनेमें समर्थ नहीं है।

(पद्यावलीसे उद्धृत)

श्रीमती वृषभानुनन्दिनी

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ-
धन्यातिधन्य-पवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥

'श्रीराधारसमुधानिधि' ग्रन्थमें त्रिदण्डिपाद श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपादने कहा है—जिन श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके वस्त्राञ्चल संचालन द्वारा स्पर्शप्राप्त पवन धन्यातिधन्य होकर श्रीकृष्णके श्रीअङ्गसे स्पर्श होने पर योगीन्द्रोंके लिए भी अत्यन्त दुर्लभ श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण अपने आपको कृत-कृतार्थ समझने लगे, उन श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजीके उद्देश्यसे मेरा प्रणाम स्वीकृत हो । श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद एक प्रधान यूथेश्वरी हैं । वे श्रीकृष्ण-लीलामें तुङ्गविद्या हैं । हम लोग भी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादके आनुगत्यमें ही श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके लिए प्रणाम करते हैं ।

इस जगत्में शोभा-सौन्दर्य और गुणोंके आधारस्वरूप नाना प्रकारकी वस्तुएँ विद्यमान हैं । श्रीकृष्णचन्द्र समस्त प्रकारके रसों और शोभा-सौन्दार्यादि गुणोंके मूल-समाश्रय हैं । वे समस्त प्रकारके ऐश्वर्य, वीर्य और ज्ञानके मूल आश्रयतत्त्व हैं । वे ही पूर्णतम भगवान् जिनके आश्रय और विषय हैं, वे स्वरूप कितने श्रेष्ठ हैं, यह बात साधारण मनुष्य-ज्ञान क्या, अनेक मुक्तपुरुषोंकी भी धारणासे अतीत है । जिस श्रीकृष्णके ऐश्वर्य और माधुर्य द्वारा समस्त जगत लालायित और मोहित हो जाता है, वे अपने माधुर्य द्वारा स्वयं ही मोहित हो जाते हैं, उन भुवनमोहन मदनमोहन को भी जो मोहित कर लेती हैं, वे कितनी आदर और सम्मान की पात्रा हैं, यह बात भाषा द्वारा साधारण लोगोंको समझायी नहीं जा सकती ।

यद्यपि कृष्ण विषयतत्त्व हैं, तथापि वे आश्रय-के ही विषय हैं । जड़जगतमें जिस प्रकार पुरुष और स्त्रीमें वस्तुतः पार्थक्य और जड़ सम्बन्ध है, ऊँच-नीच भाव है, परस्पर भेद है, श्रीकृष्ण और श्रीमती राधिकाजीमें वैसा भेद या सम्बन्ध नहीं है । श्रीकृष्णकी अपेक्षा श्रीमती वृषभानुनन्दिनी कम या अश्रेष्ठा नहीं हैं । श्रीकृष्ण ही आस्वादक और आस्वादित रूपसे नित्यकाल दो देह धारण कर वर्त्तमान हैं । जिस श्रीकृष्णके अपूर्व सौन्दर्य द्वारा स्वयं वे ही मोहित हो जाते हैं, उस श्री-कृष्णकी अपेक्षा श्रीमती राधिकाजीका सौन्दर्य अधिक न होनेसे मोहनकार्य सम्भवपर नहीं हो सकता । श्रीमती राधिका भुवनमोहन-मनोमोहिनी हैं, हरिहृद्भृङ्ग-मञ्जरी हैं, मुकुन्दमधुमाधवी हैं, पूर्णचन्द्र श्रीकृष्णकी पूर्णिमा-स्वरूपिणी हैं और कृष्णकान्ताओंकी शिरोमणि-स्वरूपा अंशिनी हैं ।

श्रीमती वृषभानुनन्दिनीका तत्त्व जीव या जीव-

समूहको भाषा द्वारा समझाया नहीं जा सकता। सेवकके पास ऐसी भाषा नहीं है, जिससे सेव्य-वस्तुके बारेमें भलीभाँति वर्णन कर सके। किन्तु सेवकोंका तत्त्व वर्णन करनेमें सेव्य तत्त्व ही समर्थ हैं। अतएव एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही हमें श्रीमती राधिकाजीका तत्त्व दर्शन करा सकते हैं। और भी एक व्यक्ति हैं, जो भी गोविन्दानन्दिनी श्रीराधिकाजीका तत्त्व हमारी शुद्धात्माको अनुभव करा सकते हैं। वे वृषभानु-नन्दिनी और श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवा करते हैं अर्थात् जो श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके निजजन श्रीगुरुदेव या गौरशक्ति हैं। जो श्रीकृष्णचन्द्र "राधाभावद्युतिसुवलित-तनु" हुए हैं अर्थात् जिन्होंने राधिकाजीका भाव और उनकी अङ्ग-कान्ति ग्रहण की है, वे कृष्णचन्द्र ही इस प्रपचमें श्रीमती राधिकाजीकी महिमाकी बात प्रकाश कर सकते हैं। उनके प्रिय दास लोग भी उस परम तत्त्वका वर्णन कर सकते हैं। इनके अति-रिक्त और कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावके पूर्व श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीका तत्त्व सम्यक् प्रकारसे प्रकाशित नहीं हुआ था। आचार्य श्रीनिम्बार्कजीने श्रीनिवासाचार्य आदि अपने शिष्योंको श्रीश्रीराधागोविन्दकी सेवा-प्रणालीका जो उपदेश दिया था, उसमें श्रीमतीजीकी महिमा इतनी विस्तारपूर्वक और स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं की गई है, जितनी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने की है। माध्याह्निक लीलामें जिनका सम्पूर्ण रूपसे प्रवेशाधिकार नहीं था, उन लोगोंके निकट ही श्रीश्रीराधागोविन्दकी नैश-लीलाकी बात आदर-णीय थी। सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजीके तटमें श्रीश्री-राधाकृष्णका रात्रि-विहारका जो वर्णन है—जैसा कि श्रीनिम्बार्कपादने वर्णन किया है, उससे श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रियतम निजजन श्रील रूपगोस्वामीजी और उनके अनुगत महापुरुषों द्वारा वर्णित श्रीराधागोविन्दजीकी माध्याह्निक-लीला-मधुरिमाकी उत्कृष्टता तारतम्य विचारसे अत्यन्त उन्नत और सुसम्पूर्ण है। द्वैताद्वैत-विचारसे अचिन्त्यभेदाभेद विचाराश्रित रसकी उत्कर्षता, गोलोकके अन्तरङ्ग-विहारकी बात या श्रीराधाकुण्डतटवर्ती कुञ्जके समीप वर्त्तमान चिन्मय कल्पवृक्षकी छायामें नवनवायमान अपूर्व-विहारकी बात स्वयं भगवान् श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुके पहले किसी उपासक या आचार्य द्वारा भली भाँति वर्णित नहीं हुई। उनमेंसे कोई-कोई केवल रासस्थलीकी लीलाकी बात ही जानते थे। किन्तु मध्याह्नके (दोपहरके) समय श्रीमती वृषभानुनन्दिनी किस प्रकारसे कृष्ण-सेवा करनेका अधिकार प्राप्त करती हैं, पहले किसीको भी उस माधुर्य-सौंदर्य-सेवामें अधिकार प्राप्त नहीं था। वंशीध्वनिसे आकृष्ट होकर अनूढ़ा और परोढ़ा (कन्या और परपुरुष द्वारा विवाहित) आदि असंख्य कृष्ण सेविकाएँ रास-स्थलीमें प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त हुईं थीं। किन्तु श्रील रूप-गोस्वामीपाद द्वारा कथित 'दोलारण्याम्बुरंशी-हृतिरतिमधुपानार्क-पूजादि-लीलो' पदद्वारा कही

गई लीला-पराकाष्ठामें प्रवेश-सौभाग्यकी बात मधुर-रस-सेवी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके आश्रित गौड़ीय वैष्णवोंको छोड़कर और किसीके द्वारा भी प्राप्य नहीं है। यह विषय नियमानन्द-सम्प्रदायके किसी भी उपासक द्वारा ज्ञात नहीं है।

श्रीमती राधिकाजीकी पाल्यदासी रूप उन्नत-पदवीकी साधारण जड़ीय मानवज्ञान द्वारा उपलब्धि नहीं की जा सकती। श्रीमती वृष-भानुनन्दिनीकी नित्यकाल अन्तरङ्ग-सेवा-मग्न उनके निजजनको छोड़कर ये सभी बातें और कोई भी कदापि जान नहीं सकता। जिस दिन हमारी बाहरी जगतकी कोई अनुभूति नहीं रहेगी, जिस दिन तुच्छ नीति, तपस्या, कर्म, ज्ञान और योगादिकी चेष्टा घृणाकी वस्तु प्रतीत होगी, जिस दिन ऐश्वर्यप्रधान श्रीनारायणकी बात भी उतनी रुचिकारिणी नहीं जान पड़ेगी, रासस्थलीमें नृत्य भी उतनी बड़ी बात नहीं जान पड़ेगी, उसी दिन आप लोग ये सभी बातें समझ सकेंगे। श्रीराधागोविन्दकी सेवाकी बात इस जड़ जगतकी भाषा द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। 'स्वकीया', 'पारकीया' आदि शब्दों द्वारा हम लोग इन्द्रियतर्पणकी बात ग्रहण करते हैं। इसलिए श्रीराधागोविन्दकी लीलाकी बात कहनेके लिए, सुननेके लिए और समझनेके लिए अधिकारी बहुत ही दुर्लभ हैं—जगतमें प्रायः नहीं हैं, कहनेसे अत्युक्ति न होगी।

एक श्रेणीके प्राकृत सहजिया लोग कहते हैं कि श्रीलरूप गोस्वामीपादने पारकीया-सेवामें अत्यन्त उन्मत्तता प्रदर्शन की है। किन्तु श्रील जीव गोस्वामीपाद वैसे नहीं हैं। ये सभी अक्षज (प्राकृत) धारणा करनेवाले व्यक्ति भोगपरा-यणता द्वारा विचार कर जो सिद्धान्त करते हैं, वास्तविक विचारसे बात वैसी नहीं है। श्रीरूपा-नुग-प्रधान श्रील जीव गोस्वामीपाद श्रील रूप-गोस्वामीपादके स्थानमें ही आचार्य-पदमें अधिष्ठित थे। श्रील जीव गोस्वामीपादने 'श्रीगोपालचम्पू' ग्रन्थमें श्रीराधागोविन्दकी विवाह-लीला वर्णन की है और अपने सन्दर्भादि ग्रन्थोंमें विचारप्रधान मार्ग अवलम्बन किया है। अतएव श्रील जीव गोस्वामीपाद द्वारा श्रील रूप गोस्वामीपाद द्वारा प्रवर्त्तित विशुद्ध पारकीय विचार स्तब्ध हो गया है—ऐसी मिथ्या कल्पना प्राकृत सहजिया लोग श्रील जीव गोस्वामीपाद पर आरोप किया करते हैं। किन्तु वास्तवमें घटना वैसी नहीं है। दो-तीन सौ वर्षोंके पूर्वके प्राकृत सहजिया-सम्प्रदायके इतिहासमें ऐसा कुविचार देखनेमें आता है। आज भी प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायमें ऐसी बातें प्रचारित हैं। श्रील जीव गोस्वामीपाद श्रीरूपा-नुग गौड़ीय वैष्णवोंके आचार्य हैं। उन्होंने हमारे जैसे क्षुद्र बुद्धिरहित जीवोंको कुपथमें गिरनेसे बचानेके लिए बहुत चेष्टा की है। रुचिविकृतिने जिन्हें ग्रास कर लिया है, अप्राकृत चिद्वैचित्र्यकी बात जो लोग समझनेमें असमर्थ हैं, वे सभी जड़बुद्धिपरायण व्यक्ति महान् सङ्कट या विपत्तिमें न पड़ जायँ, इसलिए श्रील जीव गोस्वामीपादने ऐसा सुसिद्धान्त-विचार दिखलाया है। जो लोग

नीतिकी पराकाष्ठा प्राप्त किये हैं, जो लोग अत्यन्त कठोर वैराग्य और बृहद्धर्म-व्रत-याजनमें कुशलता और पारङ्गतता प्राप्त किये हैं—ऐसे व्यक्ति भी जिन आश्चर्य-लीलाकी एक कणिकामात्र भी समझनेमें असमर्थ हैं, वैसी परम चमत्कारमयी चिन्मयी पारकीया-लीलाको अनधिकारी व्यक्ति समझनेमें असमर्थ होंगे—ऐसा जानकर ही श्रील जीव गोस्वामीपादने किसी-किसी स्थानमें उस-उस अधिकारीकी योग्यताके अनुसार नीति-मूलक विचार दिखलाया है। इसके द्वारा श्रीकृष्ण-भजनमें किसी प्रकारका दोष नहीं आ गया। श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थमें वर्णित श्रीराधा-गोविन्दजी की वैध-विवाह-कथा उनके नित्य पारकीय भावके प्रति आक्रमण नहीं है। पारकीय-रसकी परम और सर्वश्रेष्ठा नायिका श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजी मायिक अभिमन्युके साथ प्राजापत्य-बन्धन विच्छिन्न कर, सम्पूर्ण रूपसे पतिवञ्चना कर, सर्वक्षण अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी सेवाके लिए सर्वदा प्रस्तुत रहती हैं। इसके द्वारा प्राकृत विचार परिपूर्ण बुद्धियुक्त सहजिया लोग ऐसा सोच सकते हैं कि श्रीमती राधिकाजी प्राकृत-जार-भाव-रता थीं। किन्तु अरुन्धतीकी अपेक्षा भी श्रीमती वृषभानुनन्दिनीका पातिव्रत्य अत्यन्त अधिक है। श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजीमें ही सभी प्रकारके पातिव्रत्य-धर्मका उदय हुआ है। सभी प्रकारकी सुनीतियाँ मूलवस्तु श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजीके पादपद्मोंमें ही वर्त्तमान हैं। अतएव श्रीचैतन्य-चरितामृत, मध्य-लीला, ८वें परिच्छेद में कहा गया है—

"जार पतिव्रता—धर्म बाञ्छे' अरुन्धती।"

श्रीकृष्ण सभी विष्णुतत्त्वके अंशी हैं। श्रीमती राधिकाजी भी सभी महालक्ष्मीकी अंशिनी हैं। अंशी अवतारीस्वरूप श्रीकृष्ण जिस प्रकार प्राभव, वैभव और पुरुषादि अवतारोंका प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार अंशिनी श्रीमती राधिकाजी भी लक्ष्मीगण, महिषीगण और व्रजाङ्गनागण आदि शक्तियोंका विस्तार करती हैं। श्रीकृष्ण ही सर्वपति हैं और श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजी नित्यकाल ही उनकी परिपूर्णतमा सेवाधिकारिणी हैं। अतएव वे नित्यकान्ता-शिरोमणि स्वरूपा हैं। उनकी और किसी से भी तुलना नहीं की जा सकती।

श्रीकृष्ण ही एकमात्र 'विषय' हैं। स्थायी-भावयुक्त सभी जीवात्मा उस भगवत्तत्त्वके ही 'आश्रय' हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके श्रीकृष्ण विषयक रति या स्थायीभाव जीवात्माके लिए स्वरूपसिद्ध हैं। ये स्थायीभाव स्वरूपा रतियाँ स्वयं आनन्दरूपा होकर भी सामग्रीके मिलनमें रसावस्था प्राप्त करती हैं। सामग्री चार प्रकारकी है—(१) विभाव (२) अनुभाव, (३) सात्त्विक और (४) व्यभिचारी या सञ्चारी। रत्यास्वादन हेतुरूप विभाव दो प्रकारका है—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन दो प्रकार का है—जो रतिके विषय हैं

अर्थात् जिनके प्रति रति क्रियावती है, वे 'विषय' रूप आलम्बन हैं अर्थात् विषयरूप आलम्बन ही रतिके आधेय हैं और जो रतिके आधार हैं अर्थात् जिनमें रति वर्त्तमान है, वे ही 'आश्रय' रूप आलम्बन हैं।

वैकुण्ठादि धाममें त्रिविध अर्थात् भूत भविष्य और वर्त्तमान—तीनों काल ही नित्य वर्त्तमान हैं। वैकुण्ठादि लोकके हेय प्रतिफलन स्वरूप इस जड़ जगतमें जिस प्रकार भूतकाल और भविष्य-कालका सौभाग्य वर्त्तमानकालमें अनुभूत नहीं होता, मूल आकर-स्थानीय अप्राकृत वैकुण्ठादि धाममें वैसा नहीं है। वहाँ सभी प्रकारके सौभाग्य एक ही कालमें युगपत् अनुभूत होते हैं।

गोलोकमें अद्वयज्ञान श्रीकृष्ण ही एकमात्र 'विषय' हैं और अनन्त कोटि जीवात्मा ही उनके आश्रय हैं। आश्रयगण विषयसे कुछ पृथक् या द्वितीय वस्तु नहीं हैं। वे अद्वयज्ञान विषयके ही 'आश्रय' हैं। वस्तुत्वमें 'एक' और शक्तित्वमें 'बहु' या 'अनेक'—यही विषय और आश्रयके बीचमें सम्बन्ध है। अक्षज स्थूल धारणाकारी सहजिया लोग विषय-आश्रयकी बात समझनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। निर्विशेषवादियोंके विचार से विषय और आश्रयके लिए कोई स्थान नहीं है। श्रील नरहरितीर्थके पूर्वाश्रमके अधस्तन विश्वनाथ कविराज अपने 'साहित्य-दर्पण' नामक अलङ्कार-ग्रन्थमें विषय और आश्रयकी बात उतनी भली प्रकारसे वर्णन न कर सके। इनकी तो बात क्या, 'काव्य-प्रकाश' ग्रन्थके रचयिता या भरत मुनि भी उस बातको कहनेमें असमर्थ हुए हैं। श्रील रूप गोस्वामीपादके शब्दोंमें अप्राकृत विषय और आश्रयकी बात परिपूर्ण रूपसे स्पष्ट वर्णित है। अद्वयज्ञान विषय-तत्त्व व्रजेन्द्रनन्दनमें अनन्त कोटि जीवात्मा आश्रयरूपसे वर्त्तमान रहने पर भी मूल-आश्रय-तत्त्व (विग्रह)—पाँच हैं। मधुर रसमें श्रीवृष-भानुनन्दिनी राधाजी, वात्सल्य रसमें नन्द महाराज और यशोदाजी, सख्य रसमें सुबल-अर्जुन आदि, दास्यरसमें रक्तकादि, शान्तरसमें गौ, वेत्र, वेणु आदि। शान्तरसमें संकुचित चेतन चिन्मय गौ, वेत्र, वेणु, कदम्ब-वृक्ष, जमुनाका पुलिन आदि अज्ञातरूपसे श्रीकृष्णकी निरन्तर सेवा कर रहे हैं।

जिनके लिए बाहरी जगतकी बातोंमें व्यर्थ समय नष्ट करनेका अवसर बिलकुल नहीं है, वे लोग ही इन सभी बातोंका मर्म समझ सकते हैं। श्रील रूप गोस्वामीपादने यही बात दिखलाने के लिये ही विषय त्यागका अभिनय कर सूखी रोटी और चना चबाकर एक-एक पेड़के नीचे एक-एक रात्र रहकर 'कृष्णप्रीतिके लिए विषय-त्याग' का आदर्श दिखलाकर इन सभी बातोंको समझनेका अधिकार और योग्यता प्रदान की है। हम लोग जिस स्थान या जिस भूमिकामें अवस्थान कर रहे हैं, उसमें कृष्ण-प्रणयमूर्त्ति श्रीमतीराधिकाजीका तत्त्व हमारी स्थूल जड़ेन्द्रियों द्वारा दर्शन नहीं किया जा सकता। श्रीमती

वृषभानुनन्दिनी राधिकाजी आश्रयजातीय कृष्ण-वस्तु हैं। जिस राज्यमें स्थूल-जगत, सूक्ष्म-जगत या निर्विशेष चिन्मात्रकी अनुभूति नहीं है, जिस अप्राकृत धाममें चिद्विलास-चमत्कारिता परिपूर्ण रूपसे वर्त्तमान है, श्रीराधिकाजी वहीं सर्वश्रेष्ठ स्थान अधिकार कर वर्त्तमान हैं। वे श्रीकृष्ण सेवा करनेके लिए श्रीकृष्णके वक्षःस्थल पर आरोहण करती हैं, श्रीकृष्ण सेवा करनेके लिये श्रीकृष्णकी ताड़ना और भर्त्सना भी करती हैं। ये सभी बातें साधारण मनुष्य-युक्तिके उन्नत स्तरमें अधिरोहण करनेका विषय नहीं है या निर्विशेष वादियोंकी चिन्मात्रता बात भी नहीं है। परन्तु जो लोग श्रीकृष्ण सेवाके लिये अत्यन्त लोभयुक्त या लालायित हैं, केवल वे ही अपनी आत्मवृत्ति में इन सभी बातोंका मर्म उपलब्धि कर सकते हैं।

श्रीमती राधिकाजी स्वयंरूप - श्रीकामदेव श्रीकृष्णकी स्वयंरूपा कामिनी हैं। स्वयं श्रील रूप गोस्वामीजी जिनके अनुगत हैं, वे ही वृषभानुनन्दिनी समस्त प्रकारकी अप्राकृत नारियोंकी मूल आकर-वस्तु हैं। श्रीकृष्ण जिस प्रकार अंशी हैं, श्रीमती राधिकाजी भी उसी प्रकार अंशिनी है। श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके स्वरूप-वर्णनमें कहा गया है—"कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी आश-पाश"। (चै. च म ८ म प) हजार हजार गोपियोंकी यूथेश्वरियाँ, मूल अष्टसखियों की हजार हजार परिचारिकाएँ, श्रीमती वृषभानुनन्दिनीकी सर्वदा सेवा कर रही हैं। मनोवृत्ति-रूपा सखियाँ आठ प्रकारकी हैं—(१) अभिसारिका, (२) वासकसज्जा, (३) उत्कण्ठिता, (४) खण्डिता, (५) विप्रलब्धा, (६) कलहान्तरिता, (७) प्रोषितभर्तृका और (८) स्वाधीनभर्तृका।

श्रीमती वृषभानुनन्दिनी विभिन्न सेविकाओं द्वारा सेव्यके विप्रलम्भ भावको समृद्ध कर चिद्विलास चमत्कारिता उत्पन्न करती हैं। श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके आठों और आठ सखी हैं। श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजी युगपत् अष्ट-सखीके अष्ट भावसे परिपूर्णा हैं। श्रीकृष्ण जिस जिस भावके भावुक हैं, जिस रसके रसिक हैं, जिस रतिके विषय हैं, कृष्ण जब-जब जो-जो चाहते हैं, उन सभी भावोंसे परिपूर्ण उपकरणरूपसे कृष्णेच्छा - पूर्तिमयी होकर अनन्तकाल तक श्रीकृष्णकी अन्तरङ्ग-सेवा-रसमें निमग्ना हैं।

श्रीकृष्णके चौसठ गुण परिपूर्णरूपसे शुद्ध-चिन्मयी भावसे सर्वदा ही देदीप्यमान हैं। श्रीनारायणमें साठ गुण वर्त्तमान रहने पर भी श्रीकृष्णमें वे सभी गुण परिपूर्णतम मात्रा में अत्यन्त अद्भुतरूपसे विराजमान हैं। श्रीकृष्ण जिस प्रकार अपूर्व चार गुणोंके नायक हैं, उस प्रकार श्रीनारायणमें भी प्रकाशित नहीं है। श्रीकृष्ण सर्वलोक चमत्कारिणी लीलाके कल्लोल-वारिधि हैं। वे असमोर्द्ध रूपशोभा विशिष्ट हैं। वे त्रिजगतके चित्ताकर्षि-मुरली-वादनकारी हैं। वे शृङ्गार रसके अतुल प्रेम द्वारा शोभा-

विशिष्ट प्रेष्ठमण्डलके साथ विराजमान हैं। अर्थात् वे क्रीड़ा (लीला) माधुरी, श्रीविग्रह (रूप) माधुरी, वेणु-माधुरी और सेवक-माधुरी—इन असाधारण अति अद्भुत चार गुणोंको लेकर अपने नित्य धाममें वर्त्तमान हैं। ये चार गुण श्रीकृष्णको छोड़कर नारायण तकमें भी नहीं हैं।

यह जड़-जगत चिद्धामका ही विकृत प्रतिफलन है। चिद्धाममें एकमात्र भगवान ही सेव्य हैं और सभी ही उनके सेवक हैं। इस अचित् या मायिक जगतमें सेव्य और सेवकोंकी संख्या बहुत है। चिद्धाममें एकमात्र सेव्य-वस्तुका शुद्ध तात्पर्य ही वहाँके सेवकोंका चिन्मय स्वार्थ है। उसी चिद्धामके ही विकृत प्रतिफलनरूप इस अचित् या जड़ जगतमें बहुतसे सेव्य और बहुतसे सेवक पहले भी थे, अब भी वर्त्तमान हैं और भविष्यमें भी रहेंगे। इस जड़ जगतमें सेवक और सेव्यके स्वार्थ परस्पर भिन्न हैं। यहाँ सेवक अपने सुखमें बाधा या विघ्न आने पर सेव्यकी सेवाका परित्याग कर देता है। अर्थात् एक वाक्यमें कहा जा सकता है कि इस स्थानमें सेव्य और सेवकमें निस्वार्थपरत्व नहीं है एवं इस स्थानमें सभी वस्तुओंमें ही एक-तात्पर्यका अभाव है या यह स्थान व्यभिचार-दोष द्वारा परिपूर्ण है। पत्नी अपने अनित्य स्वार्थके लिये पतिकी सेवा करती है और पति अपने भोग या इन्द्रिय-तर्पणके लिए पत्नीसे प्रेम करता है। अर्थात् पति का स्वार्थ और पत्नीका स्वार्थ—दोनों एक नहीं हैं। इस जगतमें चाहे जितनी ऊँची सती स्त्री या जितना भी ऊँचा नीतिपरायण स्वामी क्यों न हो देह धर्म और मनोधर्ममें वे लोग बँधे रहते हैं। अतएव उन सभी लोगोंकी चेष्टा हैतुकी, अनैकान्तिकी और अव्यवसायात्मिका है। आत्मधर्म रूपी एकमात्र कृष्णसेवाको छोड़कर कहीं भी अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं है या सेवा नहीं है। इस जड़-जगतमें पुत्रके प्रति पिता-माताका स्नेह, और माता-पिताके प्रति पुत्रकी श्रद्धा—दोनोंमें स्थूल या सूक्ष्म इंद्रियभोगकी स्पृहा या व्यभिचार वर्त्तमान है। देह और मनके राज्यमें ही परस्पर भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध है। इसलिए वहाँ शुद्ध सेव्य-सेवक सम्बन्ध नहीं है या नहीं रह सकता।

जिस स्थानमें अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन ही एकमात्र शक्तिमान पुरुष या विषयतत्त्व हैं, जहाँ और कोई दूसरा पुरुष नहीं है, वहाँ कोई भी व्यभिचार वर्त्तमान नहीं रह सकता। वहाँ विषय एक है—'एकमेवाद्वितीयम्'; शक्ति अनन्त है अर्थात् शक्तिमत्तत्त्व और शक्ति तत्त्वके विचारमें अद्वयज्ञान है। विषय या वस्तुका एकत्व है, आश्रय या शक्तिका अनन्तत्व है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (६।८) में कहा गया है—

"न तस्य कार्यं करणंच विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।"

अद्वयज्ञान शक्तिमत्—तत्त्ववस्तु 'एक' होने पर भी शक्ति विविध या अनन्त होनेके कारण शक्तिविचारमें विशेष-विशेष धर्म वर्त्तमान हैं। विशिष्टाद्वैतवादमें शक्तिवैशिष्ट्यका निरूपण किया गया है अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादमें वस्तुका अद्वयत्व और शक्तिका वैशिष्ट्य स्थापित हुआ है। इसलिए उसमें आश्रयजातीयत्व-रहित केवलाद्वैतपर विचार नहीं है।

इस देवीधाम या जड़ जगतमें भोग्य वस्तुएँ इन्द्रियजात ज्ञान द्वारा मापी जा सकती हैं। उस इन्द्रियजात ज्ञानकी सहायतासे अतीन्द्रिय या जड़ातीत अप्राकृत राज्यकी अधीश्वरी श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजी और उनके परिकरोंका अर्थात् चार प्रकारके रसोंके रसिक आश्रयतत्त्वसमूहका विषयतत्त्वके साथ मिलावट कर अर्थका अनर्थ न समझ बैठें। आलङ्कारिक परिभाषा 'विषय'और'आश्रय'—दार्शनिक भाषामें 'शक्तिमान्' और 'शक्ति', 'भक्तोंकी भाषामें 'सेव्य' और 'सेवक' कहे जाते हैं। हम लोग यदि आश्रयजातीय विग्रहका आश्रय ग्रहण कर सकते हैं, तो यथार्थ रूपसे विषयका सन्धान निश्चय ही प्राप्त होगा। श्रीमती वृषभानुनन्दिनीजीका 'सुदुर्लभादपि सुदुर्लभ' चरणाश्रय विभिन्नांश तत्त्व जीवोंके लिए कितनी बड़ी परम लोभनीय वस्तु है, यह बात श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके पहले और किसीने भी इतने सम्यक् प्रकारसे नहीं बतलायी। 'राधा—भावद्युति - सुवलित' 'अनर्पितचर-प्रेम-प्रदाता' 'महावदान्य-शिरोमणि' श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने ही यह गुह्यातिगुह्यतम बात जगतके जीवोंको भली भाँति बतलायी है।

आचार्य श्रीनिम्बार्कपादजीने श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजीकी उपासनाकी बात बतलाई है। किन्तु वे इसे उतनी भली प्रकारसे वर्णन नहीं कर सके। क्योंकि उसमें स्वकीयवादका उल्लेख रहनेके कारण वस्तुतः उसमें श्रीरुक्मिणी-वल्लभकी उपासनाका तात्पर्य ही निकलता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत, आदि-लीला चतुर्थ परिच्छेद और मध्य-लीला, ८ में परिच्छेदमें कहा गया है—

"पारकीयभावे अति रसेर उल्लास।
व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास॥
व्रजवधूगणे एइ भाव निरवधि।
तार मध्ये श्रीराधाय भावेर अवधि॥"
"गोपी आनुगत्य बिना, ऐश्वर्यज्ञाने।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥"

श्रीविष्णुस्वामीपादका आनुगत्य स्वीकार करते हुए लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल ठाकुर द्वारा श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थमें मधुर-रसाश्रित लीलाकी बात कीर्त्तनकिये जानेपर भी उसमें श्रीश्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजीकी माध्याह्निक-लीलाकी परम चमत्कारिता या

रसोल्लासता प्रकाशित नहीं हुई है। दूसरोंकी बात तो दूर रहे, श्रीजयदेवजी द्वारा विरचित श्रीगीतगोविन्द ग्रन्थमें भी यह बात प्रकाशित नहीं हुई।

श्रीजयदेवजीके 'श्रीगीतगोविन्द' ग्रन्थसे हम लोग यह जान सकते हैं कि श्रीमती राधिकाजीने रासक्रीड़ाके समयमें 'साधारणी' विचार से अन्यान्य गोपियोंके साथ समान रूपसे देखे जानेके कारण अभिमानके साथ रासस्थलीका परित्याग किया था। रासस्थलीका परित्यागकर श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजीके सङ्ग पाने की आशा से कृष्णद्वारा एकमात्र उनकी ही अनुसन्धान-तत्परता दिखलाना इस बातका उज्ज्वलतम प्रमाण है कि श्रीमती राधिकाजी किस प्रकारसे श्रीकृष्णाकर्षिणी थीं।

श्रीमती वृषभानुनन्दिनीकी गोपनीय बात श्रीमद्भागवत शास्त्रमें अत्यन्त गुप्त और अस्पष्ट रूपसे केवल इङ्गित द्वारा बतलायी गई है। श्रीमती राधिकाजीकी बात अत्यन्त गोपनीय और गुह्य रहस्य होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें श्रील शुकदेव गोस्वामीने अर्वाचीन अनधिकारी बहिर्मुख पाठकोंके निकट इस प्रकारसे अस्पष्ट वर्णना की है।

श्रीमती राधिकाजी जगतकी माता हैं। वे सभी प्रकारकी शक्तिजातीय वस्तुओंकी जननी हैं। वे विभिन्न शक्तिपरिचयोत्थ धर्म और संज्ञा-समूहकी आकर-स्वरूपा हैं। वे स्वयं परमेश्वर श्रीकृष्णकी परमेश्वरी 'परा-शक्ति' हैं। 'शक्तिमत् वस्तु' कहनेसे जो समझा जाय, 'शक्ति' कहनेसे भी वही तात्पर्य निकलता है। श्रीमती राधिकाजी बलदेव आदिकी भी पूज्या हैं। श्रीमती अनङ्गमञ्जरी आदि सखियाँ भी श्रीमती राधिकाजीकी सेवाके लिए सर्वदा व्यस्त रहती हैं। ये ही श्रीअनङ्गमञ्जरी श्रीनित्यानन्द बलदेव प्रभुकी अभिन्नविग्रहस्वरूपा श्रीजाह्नवा-देवीके रूपमें प्रसिद्धा हैं।

जो व्यक्ति श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके चरणाश्रयको परम लोभनीय वस्तु नहीं समझते, उनके विचारको धिक्कार है। श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजीके श्रीचरणाश्रित महापुरुष लोग ही परम धन्यतम हैं।

उन श्रीमती वृषभानुनन्दिनी राधिकाजीके आश्रित महापुरुषोंका सुमहान् चरणाश्रय जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, उनका आश्रय ग्रहण करनेमें समर्थ होने पर ही हमारा परम मङ्गल होगा।

"दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः
श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ
प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि॥"

"अप्राकृत ज्योतिर्मय वृन्दावनमें चिन्मय कल्पवृक्षके नीचे रत्नमन्दिरमय वेदी पर स्थित सिंहासनमें विराजमान और परम सेवापरायणा श्रीरूपमञ्जरी आदि और श्रीललितादि प्राणप्रिय नर्म सखियों द्वारा परिवेष्टित श्रीश्रीलराधागोविन्दजीका मैं स्मरण करता हूँ।"

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(कर्म)

१८—विवाहादि विधियाँ किनके लिए पुण्य कार्य हैं ?

"अत्यन्त पशुभावापन्न पुरुषोंके लिए विवाह विधि द्वारा स्त्री-सम्बन्ध स्वीकार करना ही पुण्य है ।"

—कृ. सं. १०।३

१९—तीर्थयात्राका गौण-फल क्या है ?

"तीर्थयात्राके द्वारा मनुष्योंको काफी पवित्रता प्राप्त होती है । यद्यपि साधुसङ्ग तीर्थ-यात्राका चरम उद्देश्य है, तथापि तीर्थमें गये सभी व्यक्ति ही अपने चित्तमें अपनेको पवित्र हो गये—ऐसा समझते हैं । क्योंकि उसके द्वारा पहलेकी पापप्रवृत्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है।"

—चै. शि. २।२

२०—स्वरूपगत और सम्बन्धगत पुण्य किसे कहते हैं ?

"न्याय, सत्य, पवित्रता, दया, सरलता और प्रीति—ये सभी गुण स्वरूपगत पुण्य हैं । ये सभी पुण्य जीवके स्वरूपका आश्रय ग्रहण कर उसके अलङ्कार स्वरूप हो जाते हैं । अतएव इन्हें स्वरूपगत पुण्य कहा गया है । बद्धावस्थामें थोड़े बहुत स्थूल होकर पुण्य कहे जाते हैं—यहीं तक । और सभी पुण्य ही सम्बन्धगत हैं । क्योंकि वे सभी जीवके जड़सम्बन्धके कारण उत्पन्न हुए हैं । जीवकी सिद्धावस्थामें उनकी आवश्यकता नहीं है ।"

—चै. शि. २२।३

२१—कृष्णभक्तके हृदयमें क्या पापपुण्यकी वासना रहती है ?

"जब कृष्णभक्ति आत्माके स्वरूप और स्वधर्मालोचनारूप कार्यविशेष हो जाती है, तब जिस आधारमें उसे देखा जाता है, उस आधारमें सभी पापपुण्यरूप साम्बन्धिक अवस्था की मूल-स्वरूपा अविद्या क्रमशः नष्ट होकर सम्पूर्णरूपसे लोप (दूर) होती रहती है । यद्यपि बीच बीचमें 'भ्रष्ट' 'कील-मछली' की तरह हठात् पापवासना या पापका उदय होता है, वे तुरन्त क्रियावती भक्तिके द्वारा शान्त हो जाते हैं ।"

—कृ. स. १०।२

२२—प्रायश्चित्त कितने प्रकारका है और क्या क्या हैं ? कौनसे प्रायश्चित्तका क्या फल है ?

"प्रायश्चित्त तीन प्रकार का है—कर्म-प्रायश्चित्त, ज्ञान-प्रायश्चित्त और भक्ति-प्रायश्चित्त ।

भक्तोंके लिए प्रायश्चित्तादिके लिए प्रयास करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। कृष्णानुस्मरण-कार्य ही भक्तिप्रायश्चित्त है। अतएव भक्ति ही भक्तिप्रायश्चित्त है। अनुतापादि कार्य के द्वारा ज्ञान-प्रायश्चित्त होता है। ज्ञान प्रायश्चित्त द्वारा पाप और पापबीज अर्थात् पाप वासनाका नाश होता है। किन्तु बिना भक्तिके अविद्याका मूलसे नाश नहीं होता। चान्द्रायण आदि कर्म-प्रायश्चित्त द्वारा पाप दब जाता है, किन्तु पापबीज वासना, पाप और पापवासना-मूल अविद्या बनी रहती है। अत्यन्त सूक्ष्म विचारके द्वारा इस प्रायश्चित्त-तत्त्वको समझना चाहिए।"

—कृ. सं. १०।२

३२—वर्णाश्रमधर्मत्यागी स्वेच्छाचारी व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्तकी आवश्यकता क्यों है?

"कुछ दिनों तक म्लेच्छ या नीच बुद्धि सम्पन्न व्यक्तियोंका सङ्ग कर जो व्यक्ति पवित्र वर्णाश्रम-धर्मका परित्याग कर म्लेच्छ या अत्यन्त बहिर्मुख व्यक्तियोंकी तरह स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, वे लोग विज्ञानसिद्ध सदाचारके विरुद्ध आचरण करते हुए पतित हो जाते हैं। वे लोग प्रायश्चित्त करनेके लिए बाध्य हैं।"

—चै. शि. २।५

२४—दुर्जातिका दोष कैसे जाता है?

"दुर्जातिका दोष प्रारब्ध-कर्म है; वह केवल भगवानके नामोच्चारण द्वारा ही अनायास हो दूर जाता है।"

—जै. ध. ६ वां अ.

२५—किस उपाय द्वारा पापबीज दूर होता है?

"चित्तशुद्धिके लिए जो सभी उपाय हैं, उसमें विष्णुस्मरण ही प्रधान उपाय है। पापदुष्ट चित्तका संशोधन करनेके लिए ही प्रायश्चित्त की व्यवस्था है। उनमें चान्द्रायणादि-कर्मरूप प्रायश्चित्तके द्वारा पापकर्म पापीका परित्याग कर देता है। किन्तु पापोंका मूल जो पापवासना है, वह नष्ट नहीं होता। अनुतापरूप ज्ञान-प्रायश्चित्त करने पर पापवासना नष्ट हो जाती है। किन्तु पापबीज या पापका मूल कारणरूप भगवत्-विमुखता केवल हरिस्मृतिद्वारा दूर होती है।"

—चै. शि. २।२

२६—अपवित्रता कितने प्रकार की है और उनमें परस्पर भेद क्या है?

"अपवित्रता—शारीरिक और मानसिक भेदसे दो प्रकारकी है। चाहें शारीरिक हो या मानसिक हो, अपवित्रता तीन तरहकी है—देशगत अपवित्रता, कालगत अपवित्रता और पात्रगत अपवित्रता। अपवित्र देश या स्थानमें जाने पर देशगत अपवित्रता होती है—उस देश या स्थान के रहनेवाले व्यक्तियोंके अशुद्धाचरणके द्वारा ही उस स्थान या देशगत अपवित्रता होती है।

इसलिए धर्मशास्त्रोंमें बिना कारणके म्लेच्छदेशमें जाने पर या वास करनेपर देशगत अपवित्रता होती है, ऐसा विचार दिखलाया गया है। देश-ज्ञान-प्राप्ति, दूसरे देशके मंगलके लिए (जैसे दुष्टोंके हाथसे उस देशका युद्ध या कौशल द्वारा उद्धार करना अथवा धर्मप्रचार)—ऐसे कार्योंके लिए म्लेच्छदेशमें जानेके लिए कोई भी निषेध या प्रतिबन्ध नहीं है । म्लेच्छकी क्षुद्र विद्याका व्यवहार या वहाँकी अर्वाचीन धर्मशिक्षा ग्रहण करनेके लिए अथवा उस देशके वासियोंके साथ सहवास करनेकी इच्छासे म्लेच्छ देशमें जाने पर आर्यजातिकी अवनति होती है । वह दोष जिन्हें स्पर्श करें, वे लोग प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं।"

—चै. शि. २।५

२७—चित्तकी अपवित्रता कैसे होती है ?

"भ्रम और मत्सरताके द्वारा चित्तकी अपवित्रता होती है। उसे दूर करना कर्त्तव्य है।"

—चै. शि. २।५

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीजमुनाजी की महिमा

श्रीजमुने तव जे जस गावहि ध्यावहि निसदिन
पाप पुंज ततकाल नसत उपजत सुख प्रतिछिन ।
मनत अनेक सुविज्ञ किन्तु कोऊ पार न पावत
महिमा अपरंपार वेद श्रुति शास्त्र बतावत ॥१॥

स्याम बरन घनस्याम प्रेम अति ही उपजावत
मन्थर गतिकी धार ललित ललिता छवि भावत ।
अद्भुत ज्योति अपार राधिका मुख सम भ्राजत
नित नव नेह निकुंज स्याम के सङ्ग विराजत ॥२॥

गिरि कलिन्दके शिखरन केलि किलोलन वारी
विमल विभा विस्वास परायन जय श्रम हारी ।
अगनित ताप विनासन पटुतर तपन सुखारी
भक्तन हित अवतरित भई दिनराज दुलारी ॥३॥

अम्बरीष आकर्षन करनी सब दुःख हरनी
ब्रह्मा शङ्कर जाप करत बरनत तव करनी।
धर्मराज निज भ्रात तपन तनया तप वरनी
कलिमल पातक हारि धन्य यह तुम सों धरनी ॥४॥

नाम लेत यमुना यमना यह विदित सकल जग
यम द्वितिया स्नान कियें पावत सुरपुर मग।
देव दनुज किन्नर गन धावत नाचत पग पग
श्रीजमुने तेरे दरसन की चाँह रही लग ॥५॥

काशी कांची प्रागराज मायादिक नगरी
पुरी अयूध्या उज्जयनि जहं धाईं सगरी।
तेहि तट सदा विराजत मा, तुमसों नहिं झगरी
यमुने तव मग गमन परत तीरथ पगपग री ॥६॥

श्रीवल्लभ अति सेव्य धन्य यमुने महारानी
विट्ठल प्रभु बलिहार भये यह सबही जानी।
सूर - नन्द - गोविन्द छीतु की आस पुरानी
माथुर मण्डल रमत सदा सब जगने जानी ॥७॥

लिय मथुरा विश्राम मातु भक्तन हित कारन
व्रज भुवि महिमा बढी तुम्हीं नरलोक उबारन।
चैत्र शुक्ल षष्ठी दिन मध्य रूप विस्तारन
'बासुदेव' तव चरन सरन चाहत उर धारन ॥८॥

—डा. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी एम. ए., पी. एच. डी.

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ)

कृष्ण अपनी अमृतमयी कथाके प्रसङ्ग द्वारा जीवके अन्तःस्थित होकर अर्थात् चिन्ता पथमें आकर हृदयके अभद्र या अशुभ वासनाओंका ध्वंस करते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं कामदेव—कामदेवके भी कामदेव हैं। उनकी कामना पूरण करना ही आश्रयजातीय विभिन्नांश जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है। वही भद्र अर्थात् मंगलजनक कार्य है। वासुदेव भगवानकी वासनाके प्रतिकूल कार्य करनेवाले अभक्त बद्धजीव नश्वर कामको चरितार्थ करना चाहते हैं। यह नश्वर काम ही अभद्र अर्थात् अमंगलजनक है। शुद्ध जीवात्मा अपनी सेवाप्रवृत्तिमें बाधा प्रदान करनेवाली कामनाओं को यदि प्रतिकूल समझनेके बदले आदर प्रदान करें, तो अपने बद्धाभिमानके कारण वे सभी अमंगलजनक कर्म हरिसेवामें बाधा प्रदान करते हैं। हरिविमुखता ही प्रधान अनर्थ है। सेवाके प्रभावसे ही वह अनर्थ दूर होता है। भगवानकी नित्यवासनाके अनुकूलमें जीवकी नित्य सेवा प्रवृत्तिका उदय न होनेपर जीव बद्धाभिमानके कारण अहंग्रहोपासक या भोगपरायण अक्षजवादी हो पड़ते हैं। जिस समय नित्य इन्द्रियसमूह भगवत्सेवापर नहीं रहता, उस समय वहाँ अनित्यपर भोक्ताके रूपमें अणु चिद्वस्तु जीव सुप्त रहकर अचिद् विकार-समुद्रमें मग्न रहता है। सेवकोंको अतएव सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। कपट सेवा करते-करते मिथ्या सेवकाभिमान प्रबल होनेपर मायादेवी धीरे-धीरे उसे अपनी ओर आकर्षण करती है और उस समय अन्याभिलाष जीवके हृदयमें प्रवेश कर उसे भोगोंके प्रति आकर्षण करता है। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमःश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥

(भा. १।२।१८)

भगवत्सेवा, भागवत - श्रवण, वैष्णव-सेवा आदि ही इस अनर्थ नाशके एकमात्र उपाय हैं। अतएव पहले कहा गया है—भगवत्कथा श्रवण करने पर भगवान श्रीहरि श्रवणकारीके हृदयमें उदित होकर हृदयके सभी अमंगल नष्ट कर देते हैं। जितने ही अधिक परिमाणमें श्रवणादि क्रियाएँ होती हैं, उतने ही अधिक परिमाणमें सभी अमंगल नष्ट होते हैं। तब भागवत-सेवा द्वारा (भक्त-भागवत और ग्रन्थ-भागवत) नामापराध लक्षणयुक्त सभी अमंगल नष्ट होकर उत्तमःश्लोक भगवान् श्रीहरिमें नैष्ठिकी भक्तिका उदय

होता है। 'नष्टप्राय' कहनेसे ज्ञानकी तरह सम्पूर्ण रूपसे नष्ट नहीं समझना चाहिए। इस वाक्य द्वारा भक्तिका बाधाशून्य स्वभाव बतलाया गया है। वैष्णवोंकी शुश्रूषा और भागवत शास्त्रके श्रवण-पाठन-विचारण आदि सेवा द्वारा चिन्ता, स्मरण और अनुध्यानरूप नैष्ठिकी अर्थात् नैरन्तर्यमयी भक्तिका उदय होता है। जिस प्रकार निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान अज्ञानके रहते समय अर्गल-युक्त देखा जाता है अर्थात् निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान की सिद्धि नहीं होती, भक्ति वैसी नहीं है। भक्ति-विरोधी अभद्र कामनाएँ जब क्रमशः क्षीण होने लगती हैं, उस समय भक्ति क्रमशः बढ़ती जाती है।

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥

(भा.१।२।१९)

श्रीमद्भागवतके १।२।५३ श्लोकमें बतलाया गया है—

"त्रिलोकीके राज्य और अर्थादिके प्रति उपेक्षा कर, उनकी प्राप्ति के लिए जो एक क्षण-काल भी नष्ट नहीं करते और जो अकुण्ठस्मृति हैं अर्थात् जो भगवानके पादपद्मोंको छोड़कर और कहीं कोई भी सारवस्तु नहीं है—ऐसी स्थिर और अचञ्चल बुद्धियुक्त हैं, वे ही वैष्णवाग्रगण्य है।" उस श्लोकके तात्पर्य अनुसार तुरन्त ही सभी वासनाएँ विनष्ट होकर चित्त शुद्धसत्त्वमय होकर भगवत्-तत्त्वका दर्शन करनेकी योग्यता प्राप्त कर सके, उसका उपाय ऊपर उद्धृत किये गये श्लोक में कहा गया है।

उस समय रजस्तमोभावमय विक्षेप-लय आदि दोष और काम-क्रोध-लोभ-मोहादि षड्रिपुओं द्वारा अनावृत रहकर चित्त शुद्धसत्त्वमय होकर प्रसन्न होता है अर्थात् शुद्धसत्त्वमें अधिष्ठित होनेके पहले काम-क्रोधादि भयङ्कर शत्रुओंसे जर्जरित चित्त दर्दसे पीडित व्यक्तिके अन्नादि-ग्रहणकी तरह श्रवण-कीर्त्तनादिमें आस्वादन या आनन्द प्राप्त नहीं करता। रजः और तमोगुण द्वारा उत्पन्न जो सभी भाव हैं, वे ही कामादि छः रिपुओंके रूपमें प्रकाश पाते हैं।

अनर्थ रहते समय कुछ बाधाएँ साधकके चित्तमें जन्मग्रहण करती हैं। सेवा करते-करते 'मैं ही श्रीगुरुदेवका प्रधान सेवक हूँ, उन्होंने मुझपर ही पूर्ण विश्वास कर प्रधान सेवाका अधिकार प्रदान किया है; श्रवण-कीर्त्तन करते-करते श्रीगुरुदेवकी कृपासे प्रचार करनेका अधिकार प्राप्त करने पर मैं ही बड़ा प्रवचनदाता हूँ, मेरी तरह और कोई दूसरे लोगोंको आकर्षण नहीं कर सकता' ये सभी अभिमान प्रबल होकर सेवकको धीरे-धीरे काम-क्रोधादिके दास बना देते हैं। उस समय बिना जाने ही कामादि षड्रिपु हृदयमें बैठकर अपनी करतूत दिखलाते रहते हैं। जिससे ये सभी अभिमान न आयें, इसके लिए अभिमाननाशक उपायोंका अवलम्बन करना पड़ता है। उसमें सर्वप्रधान वैष्णवसेवा है। अपने

आपको दीनहीन जानकर दूसरे गुरुसेवकोंकी सेवामें निष्कपटपूर्वक आत्मसमर्पण करनेसे ही इस व्याधिका पूरी तरहसे नाश होता है। इस प्रकार भक्तिविरोधी सभी अशुभ कामनाओंका क्रमशः विनाश होनेके साथ-साथ भक्ति-प्रवृत्ति भी क्रमशः बढ़ने लगती है। अतएव श्रीभक्ति-रसामृतसिन्धुमें श्रील रूप गोस्वामीपाद कहते हैं—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

'श्रद्धा' शब्दका अर्थ है—कृष्ण-कथामें, कृष्ण-सेवामें, कृष्ण-भजनमें सुदृढ़ विश्वास। इन सबका अनुष्ठान करने पर सभी कर्म ही करना हो गया—ऐसा सुदृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है। उस समय भजन करनेकी प्रवृत्तिका उदय होता है। शुद्ध भक्तोंकी कृपासे भजनका क्रम अवलम्बन कर भजन करते-करते अनर्थ निवृत्ति होने पर क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भावके उदय होने पर प्रेमका प्रादुर्भाव होता है।

अनर्थ निवृत्तिके पश्चात् कामलोभादि वृत्तियाँ निष्ठावान् भक्तके चित्त पर अधिकार कर नहीं पातीं। उस अवस्थामें भक्त मिश्रसत्त्वका परित्याग कर विशुद्ध सत्त्वाश्रित होते हैं और उनके निर्मल चित्तमें भगवान् प्रकटित हो जाते हैं।

एवं प्रसन्नमनसः भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्व-विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥
(भा. १।२।२०)

इस प्रकार भगवद्भक्तियोग द्वारा मुक्तसङ्ग (मायाके संपर्कसे मुक्त) प्रसन्नचित्त जातरुचि व्यक्ति भगवत्तत्त्व-विज्ञान प्राप्त करता है। तत्त्व-विज्ञान कहनेसे भगवानके स्वरूप-गुणलीलादिकी ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त अनुभूति। इस प्रकार पहले कहे गये शब्दोंके अनुसार भगवद्भक्तियोगके प्रभावसे प्रसन्नमन मुक्तसङ्ग व्यक्तिको अर्थात् कामादि-वासनारहित व्यक्तिको भक्तियोगके प्रभावसे भागवत-सेवा, भगवन्नाम आदि भजनक्रियानुष्ठान द्वारा विज्ञान अर्थात् भगवानका साक्षात् दर्शन प्राप्त होता है। अन्तर या बाह्य भावनाको छोड़कर जो स्वतः ही अनुभूति होती है, वही साक्षात्कार या दर्शन कहलाता है।

अन्याभिलाष, कर्मफलयोग और निर्भेदब्रह्मानुसन्धान—ये तीनों ही जीवोंके बन्धनके कारण हैं। जो सभी बद्धजीव भुक्ति या भोग करनेकी अभिलाषा करते हैं, वे यथेच्छाचारिताके बन्धनमें और पुण्यबन्धनमें धर्मार्थ-काम-प्राप्तिकी आशामें आबद्ध हो पड़ते हैं। जो व्यक्ति इन सभी फल-भोगवासनाओंके हाथसे छुटकारा पाकर मुक्त होनेकी आशा रखते हैं या मुक्त हो गये हैं—ऐसा सोचते हैं, वे लोग भी हरिविमुखताके बन्धनमें जाकर फँसते हैं। यथेच्छाचारितासे मुक्त होनेके लिए पुण्यकामी फलभोगी कर्मी जो वैराग्य

दिखलाते हैं, वह भी केवल भोगोंकी अधिकाधिक प्राप्तिके लिए ही किया जाता है। ज्ञानियोंका जो नश्वर भोगवासनाके प्रति वैराग्य देखा जाता है, उसमें भगवानकी सेवाके प्रति उदासीनता प्रबल रूपमें वर्त्तमान रहनेके कारण वह भी बन्धनका कार्यमात्र ही है। कर्मकी चेष्टा और ज्ञानकी चेष्टा—दोनों ही अनात्मचेष्टाके विशृङ्खल, भक्तिविरुद्ध भावको ही दिखलाती हैं। आत्मवृत्ति-रूपा भक्तिके उदय होनेपर भजनको छोड़कर और सभी प्रयास बिलकुल अकर्मण्य हो पड़ते हैं। नश्वर भोग और त्यागकी अनुभूतिसे मुक्त होने पर ही जीव आत्मधर्ममें स्थित होनेकी योग्यता प्राप्त करते हैं। अतएव यथार्थ मुक्तपुरुषको छोड़कर दूसरों द्वारा वैकुण्ठ या नित्य वस्तु भगवान्‌की सेवा भली प्रकारसे सम्पन्न नहीं होती।

भगवत्तत्त्व विज्ञान या सम्बन्धज्ञान विषय-वासनामुक्त भगवान्‌की सेवामें सर्वदा मग्न व्यक्तियोंको ही प्राप्त होता है। यह साक्षात्कार या दर्शन बाह्य भोगमय जड़जगतकी अनुभूतिमात्र नहीं है। अपनेको जड़जगतकी अन्यतम वस्तु समझकर बद्धजीव मन द्वारा कल्पना कर इन्द्रियों की सहायतासे जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसमें जड़भोगमय भोक्ताका सम्बन्ध वर्त्तमान है। इन्द्रियों द्वारा कर्मभूमिकामें अवस्थित बद्धजीवका नश्वर-भोग 'इन्द्रिय-सेवा' कहलाता है। इसे अक्षज ज्ञान या इन्द्रियतर्पण कहा जाता है। जिस समय जीवकी नित्य चिन्मय अप्राकृत इन्द्रियाँ अद्वयज्ञान वस्तु व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए प्रयोग की जाती हैं, उस अवस्थामें नश्वर इन्द्रियोंके आवरणादि नहीं रहते। चिदिन्द्रियों द्वारा कृष्णदासकी नित्यकाल कृष्णसेवा और बद्धजीवोंका इन्द्रियतर्पण द्वारा नश्वर स्वार्थपरता रूप काम—दोनों एक नहीं हैं। इन्द्रियतर्पण और चिन्मय इन्द्रियों द्वारा हरिसेवा—दोनों ही सम्पूर्ण रूपसे परस्पर भिन्न-भिन्न क्रियाएँ हैं। कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छाके उद्देश्यसे सेवककी नित्यसेवा प्रवृत्ति-रूपा क्रिया ही साक्षात्कार है। उसके साथ बहिर्मुखज्ञानका प्रतिकूल सम्बन्ध है। साक्षात्कारके अभावमें ही बहिर्मुख दर्शन होता है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥

(भा १।२।२१)

एकमात्र परमानन्दस्वरूप होनेके कारण स्वाभाविकफलरूप प्रयोजन—साक्षात्कारका गौण फल कहा जा रहा है—आत्मस्वरूपभूत ईश्वरका साक्षात्कार प्राप्त होने पर अविद्याके अहङ्कारका ध्वंस हो जाता है, असम्भावनादिरूप सभी संशय सम्पूर्णरूपसे दूर हो जाते हैं और फलभोगयोग्य सभी कर्मफल पूरी तरहसे नष्ट हो जाते हैं। अहङ्कार हृदयग्रन्थिरूप है। जागतिक अभिमान—मैं गुणवान हूँ, रूपवान हूँ, धनवान हूँ, विद्वान हूँ—ये सभी अभिमान ही प्रबल अहङ्कार हैं। सेवाके प्रभावसे ये अभिमान नष्ट होने पर यथार्थ

सेवक बन सकते हैं। 'सभी संशय दूर हो जाते हैं'—ऐसा कहनेसे उन्हें देखनेसे ही श्रवणमननादि प्रधान भक्तिके अङ्गों सम्बन्धी सभी संशय ही नष्ट हो जाते हैं, यह जानना चाहिए। श्रवणद्वारा ज्ञेय-वस्तु भगवानके सम्बन्धमें असम्भावनारूप सन्देह या अयोग्यता नष्ट हो जाती है। मननके द्वारा ज्ञेयगत विपरीत भावनारूप अस्फूर्त्ति नष्ट होती है और साक्षात्कारके द्वारा आत्म-योग्यता-गत असम्भावना और विपरीत भावना दोनों ही नष्ट हो जाती हैं। भगवान्‌की केवल इच्छामात्रसे ही कर्मसमूह नष्ट हो जाता है, उसमें कुछ भी बाकी नहीं रहता।

भक्तिके प्रतिकूल धारणासमूह वर्तमान रहते समय श्रवणमननादि प्रधान भक्तिके अङ्गोंमें भी नाना प्रकारके सन्देह उप-स्थित हो जाते हैं। भगवानके साक्षात्कार होनेपर वे सभी सन्देह नष्ट हो जाते हैं। दृश्य-जगत् नश्वर है; अतएव नश्वर जड़ानुभूति, नश्वर और असम्पूर्ण इन्द्रियोंकी सहायतासे श्रवणादि की अपटुता आदि नाना प्रकारके सन्देह आ जाते हैं। भगवानका साक्षात्कार होनेपर वे सभी सन्देह अनात्माके भक्तिबाधक प्रयासके रूपमें दीख पड़ते हैं। ससीम अवच्छिन्न वस्तुधारणाकी संभावना है, किन्तु वैकुण्ठवस्तुमें ऐसे कीर्त्तनकी असम्भावना होने कारण श्रवणकीर्त्तनादि द्वारा फल नहीं प्राप्त होगा—ऐसा सोचकर ऐसी भक्ति-के अङ्गोंसे उदासीन हो जाना सन्देहका फल हो पड़ता है। किन्तु हरिसम्बन्धी वस्तुकी धारणामें ऐसी चेष्टा नितान्त दुर्बल और अयोग्य जान पड़ती है।

ज्ञेयगतासम्भावना—ज्ञाता ज्ञानकी सहायता से जो अनुभूति प्राप्त करते हैं, वही ज्ञेय है। मायिक जगतमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों अवस्थाओंमें परस्पर मायिक भेद वर्तमान है और परस्पर असम्पूर्ण भेदयुक्तके रूपमें प्रतीत होता है। ऐसा विचार अनुसरण कर वैकुण्ठ-वस्तुको भी ज्ञाता और ज्ञानके साथ भेदभावापन्न जानने पर ज्ञेयवस्तुमें अद्वयज्ञान विषयक नाना प्रकारकी असम्भावनाओंका उदय होता है। किन्तु अद्वयज्ञानका साक्षात्कार होनेपर ज्ञेयगत कर्त्तृसत्ता उन सभी सन्देहोंको दूर करती है। जहाँ ज्ञेयवस्तुमें कर्त्तृत्व या चैतन्यका अभाव है, वही वस्तु ही अपूर्ण, अचिदावृत, नाना प्रकारके संशयका भण्डार है। किन्तु वैकुण्ठवस्तुमें तुरन्त साक्षात्कार प्राप्त मायिक वस्तुकी तरह सन्देह नहीं होता, बल्कि सब सन्देह नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ श्रवणद्वारा 'असम्भावना' और मनन-द्वारा 'विपरीत भावना' में पार्थक्य स्थापित हुआ है। भजनीय वस्तु प्रभु नहीं हैं—यही ज्ञेय-गत विपरीत भावना है। आत्मयोग्यतागत संभावना विपरीत भावना—इसका अर्थ यही है कि 'ज्ञाता जीव दास नहीं है, वे स्वयं अहंब्रह्मोपा-सक ब्रह्मवस्तु हैं।' ये दोनों विपरीत भावनारूप सन्देह मननद्वारा नष्ट होते हैं। भली प्रकारसे मनन करने पर सच्चिदानन्दविग्रहकी विपरीत भावनारूप निर्विशिष्ट भाव दूर हो जाता है और प्रभुदर्शनसे दासकी प्रभु होनेकी अयोग्यता दृढ़ी-भूत होती है। श्रवण-मननादि साक्षात्कारका अभेदत्व प्रतिपादन करते हैं। यह प्रतिकूल या पृथक् नहीं है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसूदेव श्रौती महाराज

श्रीश्रीकृष्ण जयन्ती

(गताङ्कसे आगे)

यदि कोई कहें कि कृष्ण नारायणके अवतार हैं, ऐसा कहना भूल है—

अवतारी नारायण, कृष्ण अवतार ।
तेहों चतुर्भुज, इहों मनुष्य-आकार ।।६१।।
एइमते नानारूप करे पूर्वपक्ष ।
ताहारे निर्जिते भागवत-पद्य दक्ष ।।६२।।
पूर्वपक्ष कहे तोमार भाल त व्याख्यान ।
परव्योमे नारायण स्वयं भगवान् ।।७१।।
तेहों आसि कृष्णरूपे करेन अवतार ।
एइ अर्थ श्लोके देखि कि आर विचार ।।७२।।
तारे कहे, केने करो कुतर्कानुमान ।
शास्त्रविरुद्धार्थ कभु न हय प्रमाण ।।७३।।
अनुवादमनुक्त्वा तु न विधेयमुदीरयेत् ।
न ह्यलब्धास्पदं किंचित् कुत्रचित् प्रतितिष्ठति ।।७४।।

इस श्लोकका अर्थ इन दोनों पद्योंमें वर्णित है—

अनुवाद ना कहिया न कहि विधेय ।
आगे अनुवाद कहि पश्चाद्विधेय ।।७५।।
विधेय कहिये तारे, जे वस्तु अज्ञात ।
अनुवाद कहि तारे, जे हय ज्ञात ।।७६।।

आलङ्कारिक-विचारके अनुसार अपरिज्ञात (अज्ञात) वस्तु या विषयको 'विधेय' और परिज्ञात (ज्ञात) वस्तु या विषयको 'अनुवाद' कहते हैं। अनुवाद न कहकर पहले विधेय कहनेसे वाक्य की प्रतिष्ठा नहीं रह जाती। यह 'एते चांशकलाः' श्लोकके सम्बन्धमें भी है—

एते शब्दे अवतारेर आगे अनुवाद ।
पुरुषेर अंश पाछे विधेय संवाद ।।८०।।
तैछे कृष्ण अवतार भितरे हैल ज्ञात ।
ताँहार विशेष ज्ञान एइ अविज्ञात ।।८१।।
अतएव कृष्ण-शब्दे आगे अनुवाद ।
स्वयं 'भगवत्ता' पिछे विधेय संवाद ।।८२।।
कृष्णेर स्वयं भगवत्ता—इहा हैल साध्य ।
स्वयं भगवानेर कृष्णत्व हैल बाध्य ।।८३।।

जो लोग कहते हैं कि 'कृष्ण नारायणके अवतार हैं', वे लोग 'अनुवाद' और 'विधेय' का ज्ञान नहीं रखते। यह बात दिखलाकर 'कृष्ण ही अवतारी हैं,' और सभी अवतार उनके अंश अथवा कलाविशेष हैं, यह सिद्धान्त भली प्रकारसे संस्थापित हुआ।

श्रीब्रह्मसंहितामें (५।१ श्लोकमें) कहा गया है—

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ।।"

श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमेश्वर हैं अर्थात् वे सब अवतारोंके भी मूल अवतारी हैं। वे सच्चिदानन्दविग्रह स्वरूप हैं। वे सबके आदि या मूल हैं। वे अनादि हैं अर्थात् उनका मूल और कोई नहीं है या वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान—तीनों कालोंमें ही नित्य वर्त्तमान रहते हैं। वे गोविन्द हैं अर्थात् वे गौओंका चारण करते हैं तथा गोप-वेश युक्त हैं। वे द्विभुज मुरलीधारी व्रजेन्द्रनन्दन हैं। वे सभी प्रकारके कारणोंके भी मूल कारण हैं।

"स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय।
परम ईश्वर कृष्ण, सर्वशास्त्रे कय॥"
(श्री चै० च० आदि २।१०६)

यहाँ यह बात विचार करने योग्य है कि कंस कारागार में जिन भगवानका आविर्भाव हुआ, वे कौन तत्त्व थे? वे क्या विष्णु थे नारायण थे या स्वयं श्रीकृष्ण? स्वरूपगत तत्त्व विचार के अनुसार श्रीकृष्ण और नारायण दोनों एक ही हैं—दोनों सच्चिदानन्दविग्रह हैं। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें श्रील रूप गोस्वामीपादने वर्णन किया है—

"सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥"

सिद्धान्तके विचारसे श्रीनारायण और श्रीकृष्ण—इन दोनों स्वरूपोंमें परस्पर कोई भेद नहीं है। किन्तु शृङ्गार-रस विचारके द्वारा श्रीकृष्ण स्वरूप ही रस की उज्ज्वलताके कारण उत्कृष्टता प्राप्त है। कृष्णस्वरूपमें ही रसतत्त्वकी पूर्णतम रूपसे स्थिति है।

जहाँ अवतारी और अवतारका विचार है, वहाँ सभी अवतार अवतारीके अंशविशेष हैं। वहाँ अंश कहनेसे कोई खण्ड वस्तु या जीवकी तरह वि भिन्नांश तत्त्वको नहीं समझना चाहिए। अंश कहनेसे स्वांशको जानना चाहिए जो मूल अंशी की तरह पूर्णतत्त्व है। यह उपनिषद्में बतलाया गया है—

"पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

अर्थात् पूर्ण अवतारी और पूर्ण अवतार—दोनों ही पूर्ण अर्थात् सर्वशक्तिसमन्वित हैं। पूर्ण अवतारीसे पूर्ण अवतार लीला-विस्तारके लिए आविर्भूत होते हैं। लीलापूर्त्तिके लिए पूर्ण अवतारके पूर्णस्वरूपको अपने अन्दर ग्रहणपूर्वक पूर्ण अवतारी अवशेष रूपसे वर्त्तमान रहते हैं। किसी भी प्रकारसे परमेश्वरके पूर्णत्वकी हानि नहीं होती।

जब भगवान् वासुदेव प्रकट हुए, उनकी चार भुजाएँ थीं। पश्चात् वसुदेव-देवकीको अपना तत्त्व स्पष्ट रूपसे बतलाकर द्विभुज रूपसे प्रकट हुए। इससे यह जाना जाता है कि वासुदेव और श्रीकृष्णमें कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं। वैभव-प्रकाश होनेके कारण वासुदेवमें कुछ भिन्न भाव देखा जाता है—

"वैभवप्रकाश जैछे देवकी-तनुज ।
द्विभुज स्वरूप कभु, कभु हन चतुर्भुज ॥"
(चै० च० मध्य २०।१७५)

'स्वयंरूप' कहनेसे एकमात्र स्वयं भगवान् नन्दनन्दनको ही जानना चाहिए। यह बात इन दोनों पद्योंमें स्पष्ट वर्णित है—

'स्वयंरूप' 'स्वयंप्रकाश'—दुइ रूपे स्फूर्ति ।
स्वयंरूपे—एक 'कृष्ण' व्रजे गोपमूर्त्ति ॥
स्वयंरूपेर गोपवेश, गोप-अभिमान ।
वासुदेवेर क्षत्रिय-वेश, 'आमि—क्षत्रिय' ज्ञान ॥
(चै० च० मध्य २०।१६५, १७७)

अतएव वे पहले विष्णुरूपसे प्रकट हुए थे—ऐसी आशंका करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वैभव-प्रकाशमें वे कभी द्विभुज होते हैं, और कभी चतुर्भुज होते हैं। तब स्वयं श्रीकृष्ण के साथ विष्णु और नारायण भी अवतीर्ण होते हैं। असुर मारणादि कार्य स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का नहीं है, बल्कि विष्णुका ही कार्य है—

"स्वयं भगवानेर कर्म नहे भारहरण ।
स्थितिकर्त्ता विष्णु करेन जगत् पालन ॥
किन्तु कृष्णेर जेई हय अवतार-काल ।
भारहरण-काल ताते हैल मिशाल ॥
पूर्ण भगवान अवतरे जेइ काले ।
आर सब अवतार ताँते आसि मिले ॥
नारायण, चतुर्व्यूह, मत्स्याद्यवतार ।
युग-मन्वन्तरावतार, जेत आछे आर ॥
सबे आसि कृष्ण-अङ्गे हय अवतीर्ण ।
ऐछे अवतरे कृष्ण भगवान् पूर्ण ॥
अतएव तखन विष्णु कृष्णेर शरीरे ।
विष्णुद्वारे कृष्ण करे असुर-संहारे ॥"
(चै० च० आदि ४।८-१३)

इस प्रकार अवतारी कृष्णके साथ विष्णु आदि भगवत्तत्त्व भी अपने-अपने कार्य करनेके लिए अवतीर्ण होते हैं। साथमें देवी-देवता भी आविर्भूत होते हैं। श्रीमद्भागवतमें यह बात स्पष्ट वर्णित है—

भूमिर्दृप्तनृपव्याज-दैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सन्निधयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥
तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥
वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥
वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥
विष्णोर्मायां भगवती यया संमोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुनांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥
(भागवत, दशम स्कन्ध, १ म अ० १७, १९, २०, २३-२५)

"अत्यन्त अहंकारयुक्त छल-राज-रूपधारी दैत्योंकी असंख्य सेनाके गुरुतर भारसे अत्यन्त

पीड़िता पृथिवी देवी ब्रह्माजीके शरणापन्न हुई। इसके पश्चात् ब्रह्माजीने पृथ्वी देवीका दुःख समाचार सुनकर उसे साथ लेकर शिवजी और अन्यान्य देवताओंको लेकर क्षीर समुद्रके तीरमें गमन किया। उन लोगोंने वहाँ उपस्थित होकर स्थिर बुद्धिसे वांछाकल्पतरु विघ्नविनाशन पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु या जगन्नाथकी पुरुषसूक्त द्वारा उपासना की। दैववाणीका समाधिमें श्रवण कर ब्रह्माजीने सब लोगोंसे कहा—प्रकट सर्वैश्वर्य पूर्ण परम पुरुषोत्तम भगवान श्रीवासुदेव वसुदेवजीके घरमें स्वयं आविर्भूत होंगे। अतएव आप लोग भी यदुवंशमें अपने-अपने अंशसे जन्म-ग्रहण करें। देवताओंकी पत्नियाँ भी उनकी प्रीतिके लिए व्रजमें जन्म ग्रहण करें। जो भगवान् श्रीवासुदेवके प्रथम अंश या प्रकाश-विग्रह श्रीसंकर्षण हैं, जो देशकाल और सीमादिसे अतीत होनेके कारण 'अनन्त' नामसे प्रसिद्ध हैं, नाना अवतारोंको प्रकट करनेवाले हैं अतएव जो अंशमें शेष नामक सहस्रवदन हैं, वे ही स्वतः प्रकाश स्वयं मूल-संकर्षण भगवान श्रीकृष्णके प्रीति विधानके लिए उनके आगे प्रकट होंगे।

अद्वयज्ञानतत्त्व भगवान की एक ही माया-शक्ति स्वरूपभेदसे उन्मुखमोहिनी और विमुख-मोहिनी है। उन्मुखमोहिनी माया गोकुलेश्वरी, अन्तरङ्गाशक्ति या योगमाया नामसे प्रसिद्धा है और विमुखमोहिनी माया अखिलेश्वरी, बहिरङ्गा शक्ति या जड़माया (महामाया) नामसे विख्याता है। एक ही मायाके दो स्वरूपके द्वारा अप्राकृत और प्राकृत जगत मोहित है। जिस मायाद्वारा अप्राकृत और प्राकृत जगत दोनों मोहित हैं, वे ही भगवच्छक्ति विष्णुमाया भगवानके आदेशसे स्वांशभूता बहिरङ्गा माया शक्तिके साथ कार्य साधन करनेके लिए (अर्थात् उन्मुखमोहिनी योगमायाके द्वारा देवकी का सातवाँ गर्भ आकर्षण, यशोदाजीको योगनिद्रामें डालना आदि कार्य और विमुखमोहिनी जड़मायाके द्वारा कंसादि-वञ्चनारूप कार्य साधन के लिए) आविर्भूत होंगी।"

अतएव इस अवसरपर विष्णु या नारायण कृष्णके अङ्गीभूत तत्त्वरूपसे प्रकट हुए थे। उनके द्वारा ही पृथिवीके भारहरणादि कार्य होते हैं। स्वयं भगवान कृष्णके ये कार्य नहीं हैं, वे केवल लीलामय हैं। अतएव कहा गया है—

"आनुषङ्ग कर्म—एइ असुर मारण।
जे लागि अवतार, कहि से मूल कारण॥
प्रेमरस निर्यास करिते आस्वादन।
रागमार्ग भक्ति लोके करिते प्रचारण॥
रसिकशेखर कृष्ण परमकरण।
एइ दुइ हेतु हैते इच्छार उद्गम॥
ऐश्वर्यज्ञानेते सब जगत् मिश्रित।
ऐश्वर्यशिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत॥
आमारे ईश्वर माने, आपनाके हीन।
तार प्रेमे वश आमि न हइ अधीन॥
मोर पुत्र, मोर सखा, मोर प्राणपति।
एइ भावे जेइ मोरे करे शुद्धभक्ति॥

आपनाके बड़ माने, आमारे सम-हीन ।
सेइ भावे आमि हइ ताहार अधीन ॥
माता मोरे पुत्रभावे करेन बन्धन ।
अतिहीन ज्ञाने करे लालन-पालन ॥
सखा शुद्धसखे करे स्कन्धे आरोहण ।
तुमि कोन बड़ लोक, तुमि आमि सम ॥
प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन ।
वेदस्तुति हैते हरे सेइ मोर मन ॥
एइ शुद्धा भक्ति लइया करिमु अवतार ।
करिब विविधविध अद्भुत विहार ॥
एइ सब रसनिर्यास करिब आस्वाद ।
एइ द्वारे करिब सब भक्तेरे प्रसाद ॥
व्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण ।
रागमार्गे भजे जेन छाड़ि धर्म-कर्म ॥"
(चै० च० आदि लीला, ४।१४-१८, २१, २२, २४-२७, ३२-३३)

"अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः ।
भजते तादृशी क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥"
(भा० १०।३३।३६)

भक्तों पर अनुग्रह करनेके लिए भगवानने अपनी नरलीला प्रकटपूर्वक जो रासलीला प्रकाश की थी, उसे श्रवण कर तदधिकारी भक्त लोग उस लीलाकी आलोचना करते हुए उस लीलानुसार भजन करेंगे। किन्तु यह लीला सब लोगों के लिए ग्रहणीय नहीं है और आचरणीय नहीं है। नहीं तो मूढ़तापूर्वक आचरण करने पर विनाश अवश्यंभावी है। श्रीशुकदेवजी ने परीक्षित महाराज से कहा—

"नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद् यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥"

"ईश्वरको छोड़कर ऐसा आचरण और कोई मनके द्वारा भी न करें। शिवजीको छोड़कर और कोई समुद्रसे उत्पन्न हलाहल विष पान करने पर जिस प्रकार अवश्य मृत्यु प्राप्त होगा, उसी प्रकार मूढ़ताके कारण यदि इस भगवद् लीलाका कोई अनुकरण करें, तो वह अवश्य ही विनाश प्राप्त होगा।"

एइ वांछा जैछे कृष्ण प्राकट्य-कारण ।
असुरसंहार—आनुषङ्ग-प्रयोजन ॥
(चै० च० आदि ४।३६)

अतएव स्वयं भगवान् कृष्णके प्रकट होनेका कारण असुरसंहार नहीं है। वैकुण्ठ आदि मायातीत राज्यमें भगवानके जो सभी लीला-वैचित्र्य प्रकटित हैं, उनमें स्वयंरूप श्रीकृष्णकी लीलाओं की तरह चमत्कारिता या नवनवायमानता नहीं है। उसके ऊपर वर्तमान गोलोकमें, जहाँ स्वयंरूप श्रीकृष्णकी निजसुख तात्पर्यके लिए जो लीलाएँ प्रकटित हैं, उन लीलाओंकी उत्कर्षता ऐश्वर्यप्रधान भक्तोंके निकट प्रदर्शन करनेके लिए ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रपंचमें अवतीर्ण होते हैं। यही इच्छा ही स्वयं भगवान्के अवतीर्ण होनेका मूल प्रयोजन है।

श्रीश्रीचैतन्य चरितामृत की पद्योंकी आवृत्ति करते हुए मनोयोगपूर्वक अध्ययन करनेसे अर्थ

स्पष्ट जाना जा सकता है। अतएव इनकी विस्तार-पूर्वक आलोचना करने की विशेष आवश्यकता नहीं रहेगी।

कन्याकी रोदन-ध्वनि सुनकर प्रहरी लोग जग गये और उन लोगोंने जाकर कंसको संवाद दिया। कंस यह संवाद सुनकर अपनी शय्यासे उठकर गिरते उठते सूतिकागृहकी ओर चल पड़ा। वहाँ देवकी द्वारा बहुत अनुनय-विनय करने पर भी उसकी ओर ध्यान न देकर उसके हाथसे उस कन्याको जबर्दस्ती छीन लिया और प्रस्तरमय शिलापर उसे फेंक दिया। तब वह कन्या योगमाया देवी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें पहुँची। उनकी सिद्ध चारण, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, अप्सराएँ और नागादि वन्दना करते हुए स्तुति करने लगे। वह देवी कंसको सम्बोधन कर इस प्रकार कहने लगीं—

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसी कृपणान् वृथा॥
(भा० १०।४।१२)

रे मूर्ख! मेरी हत्या कर तुझे क्या प्राप्त होगा? जो तुम्हारे पूर्व शत्रु और विनाशक हैं, वे दूसरे किसी स्थानमें उत्पन्न हुए हैं। अतएव बिना कारण ही दीन शिशुओंकी हत्या मत कर। उस देवीका यह वाक्य श्रवण कर कंस का हृदय थोड़ासा नरम हुआ। वह देवकी-वसुदेवको छुड़ा कर अनुताप प्रकट करने लगा। वह अपने आपको धिक्कार देने लगा। दूसरे दिन कंसने सब मंत्रियों-को बुलाकर, योगमाया देवीने जो सभी बातें कही थीं, वह उन्हें कह सुनाया। देवताओंके प्रति ईर्ष्यायुक्त, देवद्वेषी, भगवद्विद्वेषी दुष्ट मंत्रियोंने उसे दुष्ट परामर्श दिया। उन लोगोंने ब्राह्मण, तपस्वी, वैदिक कर्मनिरत याज्ञिक व्यक्ति आदियोंकी हत्या करनेका प्रस्ताव रखा। कंसने उन लोगोंके कथनानुसार चारों ओर यह कुकर्म करनेका आदेश देकर फिरसे देवकी-वसुदेवको कारागारमें बंद कर दिया। दूसरी ओर नन्द-व्रजमें आनन्दका सागर उछल रहा था।

श्रीकृष्ण पुत्ररूपसे आविर्भूत हुए हैं—जान-कर उदारबुद्धि नन्द महाराज अत्यन्त आनन्दित हुए और वे नहा-धोकर, अलङ्कार-वस्त्रादि धारण कर, वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर स्वस्ति-वाचन आदि कराकर यथाविधि पुत्रका जातकर्म, देवता, और पितरोंकी पूजा करवाये। उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्ररत्नादि विभूषिता बीस लाख गौएँ और रत्नसमूहयुक्त सुवर्णरसाक्त वस्त्र समा-वृत सात तिलका पर्वत प्रदान किया। व्रजपुर विचित्र ध्वजा, पताका-माला, वस्त्र, पल्लव और तोरण द्वारा विभूषित हो रहा था। गृहोंके भीतर, बाहर, द्वार, आङ्गन आदि सुमार्जित और गन्धादिसे सुसिक्त किये गये थे। गीतवाद्य, भेरी, दुन्दुभि, शंख आदिकी ध्वनिसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं। गौएँ, बैल, बछड़े आदियोंको हल्दी और तेलसे सिक्त कर विचित्र धातु, मोरपंखयुक्त माला, वस्त्र और सोनेके अलङ्कारोंसे विभूषित

किया गया। गोप लोग मूल्यवान वस्त्र, पगड़ी, कुर्ता, आभरण आदिसे सुसज्जित होकर नाना प्रकारके उपहारादि लेकर उपस्थित हुए। गोपियाँ भी यशोदाजीके सुपुत्र जन्मसे अत्यन्त प्रसन्न होकर वस्त्र, अलङ्कार, काजल आदि द्वारा भूषिता हुईं और उपहारादि लेकर शीघ्र ही नन्दगृहमें पधारीं। सभीने नवजात शिशुके लिए आशीर्वाद प्रदान कर गीतादि गाकर आनन्द प्रकाश किया। किया। गोप लोग आनन्दित होकर परस्पर दूध, दही, घृतादि, जल, नवनीत आदि चारों ओर फेंकने लगे। महामना नन्द महाराज उन्हें भी वस्त्र, अलङ्कार, गौ आदि प्रदान करने लगे। विष्णुपूजाकी विशेष व्यवस्था कर अन्यान्य सज्जन, गण्यमान्य व्यक्तियोंका भी सम्मान किया। महाभागा, दिव्यवस्त्र, कण्ठाभरण, अलङ्कार आदि द्वारा विभूषिता रोहिणीदेवीका नन्द-महाराजने प्रचुर अभिनन्दन किया। इस जन्मोत्सवमें चारों ओर आनन्द सागर उमड़ पड़ा। उस समयसे नन्दव्रज भगवान श्रीहरिका निवास-स्थान होनेके कारण लक्ष्मीजी (सर्वलक्ष्मीमयी श्रीमती राधिकाको गुप्त रूपसे लक्ष्य किया गया है) का विहारस्थल होकर सर्वसमृद्धियुक्त हुआ।

इस जयन्ती या जन्माष्टमी-तिथिका वैष्णव लोग उपवास, सर्वक्षण कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत-पाठ, मध्यरातमें विशेष यत्नके साथ पूजादि कर सम्भ्रमके साथ पालन करते हैं। दूसरे दिन महासमारोहके साथ नन्दोत्सव आदि कर प्रसाद-वितरण, कीर्त्तनादि आदि भक्ति-अङ्गोंका पालन करते हैं।

श्रीजन्माष्टमी-कथा श्रवण-कीर्त्तनमें सभी सज्जन ही परम आनन्द प्राप्त करते हैं। भक्तोंकी बात क्या उनके लिए तो विशेष पालनीय है ही। यदि दूसरे व्यक्ति भी साधुसङ्गमें श्रवण, कीर्त्तन और उत्सवादिमें योगदान करें, तो उनकी भक्ति क्रमशः बढ़कर वे लोग भी प्रेमदशा प्राप्त करनेके अधिकारी हो सकेंगे। भगवानके स्मरण करते हुए उनके जन्मदिनयात्रा महोत्सवादिमें सक्रिय रूपसे भाग लेने पर विशेष भक्ति-उन्मुखी सुकृति होती है। स्वयं भगवान्, श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम्।
गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मदगृहोत्सवः॥

(भा० ११।११।३६)

मेरी जन्म-लीलादिका कथा-वर्णन, पर्व अर्थात् जन्माष्टमी आदिका अनुमोदन और सम्मान, उत्सवादिकी व्यवस्था और योगदान, गीत-वाद्य-नृत्य-कीर्त्तन-पाठ आदिके द्वारा सगोष्ठी मेरे मन्दिरमें यात्रामहोत्सवादि पालन करना भक्तों का कर्त्तव्य है।

परम पावन श्रीश्रीकृष्ण-जयन्तीकी जय! स्वयं अवतारी भगवान् श्रीश्रीकृष्णचन्द्र की जन्माष्टमी-तिथिकी जय! जयन्ती या रोहिणी नक्षत्र सुशोभित श्रीश्रीभगवदाविर्भाव-तिथिकी जय! उसके पालन करने वाले श्रीश्रीमन्महाप्रभुके अनुगत शुद्ध भक्तों की जय!

—श्रीहरिपद दासाधिकारी, विद्यारत्न,
पो०—मुंगेर (बिहार)

श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीरथ-यात्राका प्रचलन

क्या श्रीरूपानुगधाराके विरुद्ध है ?

"श्रीगौड़ीय दर्शन" त्रयोदश वर्ष, प्रथम संख्यामें प्रकाशित 'श्रीरथ-यात्राय श्रीरूपानुगानुचिन्तन' नामक प्रबन्ध पढ़ा। उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि उक्त प्रबन्ध आदरणीय सम्पादक महोदयको बिना दिखलाये ही प्रकाशित कर दिया गया है।

उक्त प्रबन्धमें अनभिज्ञ लेखक 'भक्ति-कोविद्' महोदयने बिना कुछ अनुसंधानका क्लेश स्वीकार किये योंही मनगढ़न्त और निराधार बातें लिख मारी हैं। उनका कहना है कि श्रीनवद्वीप धाम गुप्त वृन्दावन होनेके कारण वहाँ श्रीरथ-यात्रा लीला का प्रचलन श्रीरूपानुगधाराके विरुद्ध है। उसके समर्थनमें उन्होंने कतिपय असंगत युक्तियाँ प्रदर्शित की हैं—

(१) श्रीवृन्दावनमें रथयात्रा-लीलाका प्रचलन नहीं है। अतएव अभिन्न-व्रजमण्डल—श्रीनवद्वीप धाममें भी क्यों यह लीला प्रदर्शित हो ?

(२) व्रज-गोपियोंको रथ देखकर भीषण अनिष्ट आशंकाकी उद्दीपना होती है। फिर गोपी-भावानुभावित रूपानुग वैष्णवजन ही भला रथ-यात्राका दर्शन या प्रचलन किस प्रकार कर सकते हैं ?

(३) अभिन्न-व्रजमण्डल श्रीनवद्वीप धाममें भजन-प्रवीण किसी भी प्राचीन महात्माने आज-तक श्रीरथ-यात्रा लीलाका प्रचलन नहीं किया है।

(४) जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने भी श्रीगौर-धाममें रथ-यात्रा-लीलाका प्रचलन नहीं किया है।

(५) श्रीधाम नवद्वीपमें द्वारका-दर्शन क्या उचित या संभव है ?

अतः श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीरथ-यात्राका प्रचलन श्रीरूपानुगत्यके विरुद्ध है।

यहाँ इन युक्तियोंके ऊपर विवेचना करने की आवश्यकता है।

(१) श्री 'वृन्दावनमें श्रीरथ-यात्रा-लीलाका प्रचलन नहीं देखा जाता'—लेखकका यह कथन सर्वथा निराधार एवं स्वकपोल-कल्पित है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक कभी भी स्वयं वृन्दावन या व्रजमण्डलमें नहीं पधारे अथवा यहाँ के रहनेवाले अभिज्ञ वैष्णवोंसे अनुसंधान करने का भी कष्ट नहीं किया। वृन्दावनमें गौड़ीय वैष्णवोंके तीनों आराध्य ठाकुर—श्रीमदन-मोहनजी, श्रीगोविन्दजी तथा श्रीगोपीनाथजी—

इन तीनों ठाकुरोंके श्रीमन्दिरोंमें सैकड़ों वर्षोंसे प्रतिवर्ष ही पुरीके श्रीरथ-यात्राके अवसरमें ही बड़े समारोहपूर्वक श्रीरथ-यात्रा-लीला प्रदर्शित होती है। यही नहीं, इन तीनों प्रसिद्ध मंदिरोंके अतिरिक्त अन्यान्य गोस्वामियोंके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधादामोदर मंदिर, श्रीराधाश्यामसुन्दर मंदिर, श्रीराधा गोकुलानन्दजी मंदिर एवं अन्यान्य सम्प्रदायोंके प्रमुख मंदिरों—श्रीरंगनाथजीके मंदिर, श्रीशाहबिहारीजीके मंदिर आदि प्रायः सभी मंदिरों एवं ब्रजवासियोंके घरों-घरों में भी इस रथ-यात्रा-लीलाका प्रचुर प्रचलन देखा जाता है। यही नहीं, मथुरा और ब्रजमंडलके नन्दगाँव, बरसाना तथा श्रीराधाकुण्ड तकमें भी इस लीलाका प्रचलन देखा जाता है। वृन्दावन और श्रीराधाकुण्डमें तो श्रीजगन्नाथदेवके प्राचीन मंदिर भी हैं। अतः वृन्दावन और ब्रजमण्डलमें श्रीरथ-यात्राका प्रचलन नहीं है—यह कथन सर्वथा असत्य है।

विश्वभरमें श्रीरूपानुग वैष्णवजन हैं; वहीं उन्होंने अपनी भजन-समृद्धिके लिए श्रीरथ-यात्रा-लीलाका प्रचलन किया है या करते हैं। श्रीगौर-लीलाके परिकर श्रीकमलाकर पिप्पलाई—कृष्ण लीलाके द्वादश गोपालोंमेंसे महाबल नामक सखा हैं, जिन्होंने बंगालमें महेश नामक स्थानमें श्रीजगन्नाथदेवकी सेवा एवं श्रीरथ-यात्रा-लीला का प्रकाश किया है, जो आज भी पूर्ववत् प्रतिवर्ष बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न होती है। उसके निकट ही श्रीरामपुरके अन्तर्गत वल्लभपुर तथा चातरा में श्रीजगन्नाथदेव सेवित होते हैं तथा वहाँ भी सैकड़ों वर्षोंसे रथ-यात्रा निकलती है। ढाका जिले (पाकिस्थान) के अन्तर्गत धामराई ग्राम की रथ-यात्रा सुप्रसिद्ध है। श्रीगौरलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुरद्वारा उनके श्रीपाट—श्रीमामगाछी (श्रीनवद्वीपके मोदद्रुम द्वीपके अन्तर्गत) ग्राममें प्रतिष्ठित श्रीजगन्नाथदेव आज भी सेवित हो रहे हैं। मेदिनीपुरके अन्तर्गत महिषादलकी रथ-यात्रा प्रसिद्ध है। आजकल अमेरिकाके 'सान्फ्रांसिस्को' आदि नगरोंमें भी श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित भावनानुसार ही श्रीरथ-यात्रा-लीला बड़े समारोहसे सम्पन्न होती है।

श्रीरूपानुगत्य एवं श्रीरथयात्राका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। जहाँ श्रीरथ-यात्रा-लीलाका अभाव है, वहाँ श्रीरूपानुगत्यका कुछ न कुछ अंशोंमें अभाव ही समझना चाहिए। परन्तु यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि साधन-सम्पन्न श्रीरूपानुग आचार्यगण भौमजगतमें इस लीलाका प्रकाश कर श्रीगौरसुन्दरकी रथ यात्रामें प्रदर्शित भावनाको—सुदीर्घ विरहके पश्चात् विरहकातर श्रीमती राधिका आदि ब्रजगोपियोंसे मिलनेके लिये वृन्दावनमें कृष्ण रथारूढ़ होकर पधार रहे हैं—इस भावको अपने हृदयमें उद्दीपित कराकर अपने भजनकी समृद्धि कराते हैं और कतिपय निष्किंचन रूपानुग वैष्णवगण साधन-सुयोगके

अभावमें इस लीलाकी उक्त भावनाको मानसी सेवा द्वारा अथवा पुरी आदि स्थानोंमें श्रीरथ-यात्रा-लीलाका दर्शन कर अपने हृदयमें उद्दीपित कराकर अपने भजनकी समृद्धि कराते हैं। दोनों मूलतः एक ही तात्पर्यपर हैं। इनमें कोई भेद नहीं है।

(२) 'रथ-दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें निदारुण क्षोभ और अनिष्टकी आशंका उत्पन्न होती है'—यह कथन भी सब क्षेत्रोंमें सत्य नहीं है। साक्षात् राधाभाव-कान्ति-सुवलित श्रीगौरसुन्दर (स्वयं श्रीकृष्ण) तथा श्रील गदाधर गोस्वामी (श्रीमती राधिका), श्रीस्वरूपदामोदर (श्रीललिताजी), श्रीरायरामानन्द (श्रीविशाखा), श्रीरूप गोस्वामी (श्रीरूप मञ्जरी), श्रीसनातन गोस्वामी (श्रीलवंगमञ्जरी), श्रीदास गोस्वामी (श्रीरतिमञ्जरी) आदि श्रीगौरसुन्दरके सभी पार्षदगण (जिनमें अधिकांश ही व्रजकी सखियाँ और सखा थे) रथ-यात्रामें सम्मिलित होते थे। वे सभी 'कृष्ण लइया व्रजे जाई' इसी भावावेशमें विभोर होकर रथके आगे नृत्य-कीर्तन करते थे। क्या उन्हें रथ देखकर किसी प्रकारका क्षोभ या दुःख होता था ? कदापि नहीं। फिर उनके अनुगत रूपानुग वैष्णवोंको ही रथ-दर्शनसे क्यों क्षोभ या अनिष्टकी आशंका होगी ?

श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रवर्त्तित रथयात्राकी भावनाका अन्तर्निहित उद्देश्य यह है—सुदीर्घ विरहके पश्चात् सूर्य ग्रहणके उपलक्षमें कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णके साथ श्रीमती राधिका आदि गोपियों का मिलन हुआ था। परन्तु श्रीकृष्ण राजवेशमें रहनेके कारण तथा उनके साथ हाथी, घोड़ा, सैन्य तथा द्वारकाके पार्षद आदि विराट ऐश्वर्य रहनेके कारण श्रीमती राधिकाको संतोष नहीं हुआ। वे कृष्णको गोपवेशमें माधुर्यलीलास्थली श्रीवृन्दावनमें देखना चाहती थी। इसीलिये वे कृष्णको व्रजमें ले जाना चाहती थीं। पद्मपुराण में कृष्णका रथारूढ़ होकर पुनः वृन्दावन-आगमनकी लीला ही जगन्नाथपुरी या अन्यान्य स्थानों में प्रदर्शित श्रीरथ-यात्रा-लीलामें परिस्फुट है। इसलिए व्रजमें अथवा श्रीधाम नवद्वीपमें इस लीलाके प्रकटित होनेमें क्या बाधा है ? श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित इस निगूढ़ भावनाकी उद्दीपनाके लिए ही उनके अनुगतजनोंने सर्वत्र ही रथ-यात्रा-लीलाका प्रचलन किया है और वे कर भी सकते हैं। श्रीमन्महाप्रभुजीकी भावना—'कृष्णे लइया व्रजे जाई ए भाव अन्तर' एवं 'यः कौमारहरः' में परिस्फुट है। अतएव गोपियोंको अथवा गोपी भावान्वित वैष्णवोंको जिस रथमें बैठकर कृष्ण व्रजमें आगमन करते हैं, उस रथ को देखकर परम उल्लास ही होता है, क्षोभ नहीं। हाँ, जो रथ कृष्णको व्रजसे बाहर—गोपियों से दूर ले जाता है, उसी रथको देखनेसे ही क्षोभ और अनिष्टकी आशंका होती है।

उद्धव जब व्रजके गोप-गोपियोंकी आज्ञा लेकर व्रजसे कृष्णके निकट मथुरा जानेके लिए रथमें बैठे, उस समय व्रजके गोप-गोपियोंने प्रेमसे

गद्गद् होकर कृष्णके लिये नाना प्रकारके उपहार रथमें सजाकर उद्धवजीको बड़े सम्मानसे विदा किया—

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदा नन्दमेव च ।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥
तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ।
एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥
(श्रीमद्भा० १०।४७।६४, ६५, ६८)

पुनः कुछ समयके पश्चात् श्रीबलदेवजी रथारूढ़ होकर नन्दगोकुलमें उपस्थित होनेपर गोप-गोपियाँ सभी लोग प्रीतिपूर्वक उनका अभिनन्दन करते हैं—

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥
परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीभिरभिनन्दितः ॥
(श्रीमद्भा० १०।६५।१,२)

पुनः श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रील जीव गोस्वामीजीने पद्मपुराणके श्लोकोंके आधार पर दन्तवक्र-वधके पश्चात् कृष्णके रथारूढ़ होकर व्रजमें आगमनका वर्णन किया है। कृष्णकी शंख-ध्वनि और रथकी घर्घर ध्वनिका श्रवणकर व्रज के गोप-गोपी आबाल वृद्ध-वनिता सभी कृष्णके आगमनका अनुमान कर उनके दर्शनोंकी उत्कट लालसासे जो जहाँ थे, वहींसे शंख और रथ-ध्वनि की ओर वेगसे दौड़ पड़े। कुछ समीप पहुँचने पर जब उन्होंने रथकी ध्वजा पर बैठे हुए गरुड़को देखकर रथमें कृष्णके होनेकी निश्चयता कर ली, तब वे आनन्दातिरेकके मारे जड़वत् होकर आगे चलनेमें भी असमर्थ हो पड़े तथा वहींसे केवल अपनी ओर आते हुए रथकी तरफ अपनी दृष्टिको ही अग्रसर किया—

"स्त्री-बाल-वृद्ध-वनिता व्रजवासिनस्ते,
कृष्णागतिं यदुपुरादनुमाय शंखात् ।
एवं द्रवन्ति चपलं स्म तथा विदुर्न,
स्वात्मानमप्यहह किं पुनरग्रपश्चात् ? ॥

अथ पुनः पर्यगिल्लच्छल्ल-ध्वनिनिरगल-रथ-घर्घरस्वन-स्वर्गंजनकृत सद्य एव स्थगित-गतय-स्तत्रत्य इवावतस्थिरे ॥
(श्रीगो० च० त्रि० पू० ३४-३५)

अतएव व्रजगोपियोंको रथ-दर्शनसे सभी क्षेत्रोंमें ही क्षोभ और अनिष्टकी आशंका होती है—यह बात कदापि ठीक नहीं है। उपरोक्त क्षेत्रोंमें सर्वत्र ही गोपियोंको रथ-दर्शनसे आनन्द ही हुआ है।

श्रीरथ-यात्रा-लीला या श्रीरूपानुग भजन मार्गमें भावनाकी ही प्रधानता होती है। उसमें स्थूल-दृष्ट वस्तुओं अथवा स्थानोंका अधिक महत्व नहीं होता। रथ-यात्रा-लीलामें कृष्ण व्रज आगमन कर रहे हैं—यही भाव उद्दीपित होता है। इस लीलामें द्वारका या मथुरा धामकी स्फूर्ति नहीं होती; स्फूर्त्ति होती है केवल सुदीर्घ दिनके पश्चात् कृष्ण व्रजमें लौट रहे हैं इस भाव की।

पुरीके श्रीजगन्नाथ मंदिरसे श्रीजगन्नाथदेवजी श्रीगुण्डिचा मन्दिरमें गमन करते हैं अर्थात् द्वारका से वृन्दावन गमन करते हैं। उसमें राधाभाव विभावित श्रीगौर-सुन्दर एवं गोपीभाव विभावित श्रीगौरसुन्दरके अन्तरंग जनोंको परमोल्लास होता है। यहाँ तक कि वे सभी लोग उल्टी रथ-यात्रामें भी उक्त भावावेशमें ही सम्मिलित होते हैं और बड़े उल्लाससे रथके आगे-आगे नृत्य-कीर्तन करते हैं। उनके उल्टी रथ-यात्रामें नृत्य गीत करनेसे क्या यह समझा जायगा कि वे लोग कृष्णको गुण्डिचाबाड़ी अर्थात् वृन्दावनसे पुरी-मन्दिर अर्थात् मथुरा या द्वारका लौटा रहे हैं ? कदापि नहीं। ऐसा समझना भूल होगा। श्रीचैतन्यचरितामृतमें सपार्षद श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका उल्टी रथ-यात्रामें सम्मिलित होकर नृत्य-कीर्तन करनेका उल्लेख है—

आर दिने जगन्नाथेर भीतर-विजय।
रथे चढ़ि जगन्नाथ चले निजालय॥
पूर्ववत कैल प्रभु लइया भक्तगण।
परम आनंदे करेन नर्तन कीर्तन॥
(चै. च. म० १४।२४४-२४५)

व्रज-गोपियाँ और विशेषत: श्रीमती राधिका कृष्णके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होने पर भी वृन्दावनको छोड़कर अल्प दूर ही अवस्थित जब मथुरामें भी गमन नहीं करती, तब पुरी मन्दिर या गंभीरा जो द्वारका-स्वरूप (क्योंकि वहीं से रथ-यात्रा निकलती है) वहाँ राधाभाव सुवलित सपार्षद गौरसुन्दर कैसे निवास करते थे ? अथवा जब श्रीगौरसुन्दर पुरी के उपवनको वृन्दावन, समुद्रको यमुना, और चटकपर्वतको गोवर्द्धन पर्वत ही देखते थे, तब वैसे वृन्दावनमें रथ-यात्रा-लीला 'भक्तिकोविद्' महोदयगो दृष्टिसे क्या रागानुगा या रूपानुगत्यके विरुद्ध क्रिया-कलाप होगा ?

श्रीवृन्दावनवासी गोस्वामीवृन्द, श्रील ठाकुर भक्ति विनोद, श्रील प्रभुपाद और प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज प्रमुख श्रीरूपानुगाचार्यगण श्रीपुरीधाममें रथ-यात्रा दर्शन करने क्यों पधारते थे—यदि रथ-यात्रा दर्शनसे उन आचार्योंके हृदयमें किसी प्रकारका क्षोभ या निदारुण अनिष्टकी आशंका ही होती ? इससे यही प्रतीत होता है कि रथ-यात्राका दर्शन करने में व्रज-गोपी-प्रेमकी ही उद्दीपना होती है। एवं श्रीरूपानुग भक्तजनोंको यही अभीष्ट है।

(३) लेखकका यह कथन कि अभिन्न व्रज-मण्डल—श्रीनवद्वीप धाममें किसी भी प्राचीन-भजन-प्रवीण महात्माने रथ-यात्रा-लीलाका प्रकाश नहीं किया है; इसीलिए वहाँ रथ-यात्रा-लीला प्रचलन अनुचित है—यह सर्वथा निरर्थक और असंगत है। क्योंकि श्रीमन्महाप्रभुके समय से लेकर आजतक भी श्रीधाम नवद्वीपके प्राय: सभी गौड़ीय आचार्यगण तथा भक्तगण रथ-यात्राके समय पुरी धाममें ही उपस्थित होकर वहीं रथ-यात्रा दर्शन कर अपने हृदयमें श्रीगौर-सुन्दर द्वारा प्रदर्शित भावनाकी स्फूर्ति कराकर

अपने भजनकी समृद्धि कराते हैं। उनके हृदयमें अभी तक श्रीधाम-नवद्वीपमें रथ-यात्रा प्रकाश करनेकी न तो कोई प्रेरणा हुई, और न उन्होंने इसकी अब तक कोई आवश्यकता ही समझी। परन्तु जब कभी भी उनके हृदयमें प्रेरणा हुई, तभी उन्होंने गौड़-मण्डलके महेश आदि विभिन्न स्थानोंमें इस लीलाका प्रकाश किया है। और प्रेरणा होनेपर श्रीनवद्वीप धाममें भी इस लीलाके प्रकाश होने पर वह श्रीरूपानुग भजन-मार्गके विरुद्ध कार्य नहीं होगा। उदाहरण-स्वरूप श्रीगौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें श्रीमन्महाप्रभुजीके समयसे ही श्रीमद्भागवतको ही श्रीब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य माना जाता है। परन्तु आवश्यकता प्रतीत होनेपर श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने पृथक रूपमें श्री 'गोविन्द भाष्य' को प्रकट किया है। उनका यह कार्य 'भक्तिकोविद्' महोदयकी दृष्टिसे क्या सिद्धान्त विरुद्ध होगा अथवा सिद्धान्त सम्मत श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका गौरव स्वरूप होगा ?

(४) जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने श्रीधाम मायापुरके अन्तर्गत व्रजपत्तनमें (श्रीचैतन्य मठ) में श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डका प्रकाश किया है, देव-वर्णाश्रम-धर्मका प्रचार किया है, गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में गैरिक वसन और त्रिदण्ड वेशका पुनरावर्तन किया है, देश और विदेशोंमें गौड़ीय वैष्णव धर्मकी विजय-पताकाको फहराया है। इन आचार्यकुल चूड़ामणिसे पूर्व किसी भी पूर्वाचार्य ने उक्त कार्योंका प्रचलन नहीं किया है। क्या इसीलिए श्रीलप्रभुपादके इन कार्योंको श्रीरूपानुगत्यके विरुद्ध माना जायगा ? कदापि नहीं। वैसे कहनेवाले स्वयं ही भक्तितत्त्व-अनभिज्ञ होंगे।

(५) हमने पहले ही कहा है कि श्रीरथ-यात्रा-लीलामें 'कृष्ण लइया व्रजे जाई'—यही भाव प्रबल होता है। उसमें द्वारका दर्शन या स्फूर्तिका कोई गंध तक नहीं रहता। अतएव रथ-यात्रा-लीला प्रचलनसे श्रीधाम नवद्वीपमें जहाँ-तहाँ द्वारका दर्शनका प्रश्न अप्रासंगिक है। दूसरी तरफ अभिन्न-वृन्दावन—श्री नवद्वीप मंडल अंशी-धाम हैं। उनमें मथुरा, द्वारका, अयोध्या और परव्योम आदि सभी धाम वैसे ही विद्यमान हैं—जैसे अंशी कृष्णमें नारायण और विष्णु आदि सभी अंश तत्त्व विद्यमान रहते हैं। श्रीधाम मायापुर स्थित चन्द्रशेखर भवनमें (व्रजपत्तनमें) स्वयं श्रीगौरसुन्दरने श्रीरुक्मिणी भावसे नृत्य किया था। श्रीरुक्मिणीदेवीका द्वारका धाम सर्व-विदित है। अतएव यदि व्रजपत्तनमें (व्रज या श्रीराधाकुण्डमें) यह लीला संभव है, तब श्रीधाम नवद्वीपमें द्वारका दर्शन असंभव कैसे है ? और वहाँ रथ-यात्रा लीलाका प्रकाश क्यों संभव नहीं है ?

अतएव सिद्धान्त यह है कि श्रीरथ-यात्रा लीला एवं श्रीरूपानुगत्यका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। श्रीरूपानुग वैष्णवगण श्रीधाम नवद्वीपमें सर्वत्र ही इस लीलाका प्रकाश कर श्रीमन्महाप्रभुके प्रवर्त्तित पन्थासे श्रीरूप गोस्वामीके—"प्रियः सोऽयं कृष्णः.....कालिन्दीपुलिन विपिनाय स्पृहयति।" श्लोकके अन्तर्निहित भावनाकी उद्दीपना कराते हैं। और यही श्रीरूपानुगजनोंकी भजन-समृद्धिका दिग्दर्शन है।

—सम्पादक

परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मका

प्रथम वार्षिक-विरहोत्सव

[श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समिति एवं उसके अधीनस्थ भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठों एवं प्रचार-केन्द्रोंके संस्थापक, जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके परम-प्रेष्ठजन, श्रीश्रीस्वरूपानुगवर नित्यलीला-प्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तर-शतश्री-श्रील भक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी प्रथम-वार्षिक विरह-तिथि-पूजा और महोत्सव ८ कार्तिक, २५ अक्टूबर, शनिवार, श्रीकृष्ण-शारदीया रास-पूर्णिमाके दिन समितिके तदाचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी अध्यक्षतामें समितिके मूल मठ—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ और श्रीश्रील गुरुपादपद्मके चरणाश्रित ऐकान्तिक सेवकोंके द्वारा अन्यान्य शाखा-मठोंमें सुसम्पन्न हुआ है ।]

(क) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें—

विरह-तिथिके दिन मंगलारतिके पश्चात् समितिके वर्तमान आचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी अध्यक्षतामें श्रीमंगलाचरण, 'श्रीगुर्वष्टक', 'गुरुदेव कृपा बिन्दु दिया', 'जे आनिला प्रेमधन' आदि विरह-सूचक वैष्णव महाजन-पदावलियोंका कीर्तन हुआ । त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज तथा श्रीपाद मुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी और अन्यान्य गुरु-सेवकोंने अपने मधुर एवं विरह-व्यथित स्वर-लहरीसे सभास्थलमें विरहकी धारा प्रवाहित कर श्रोताओंको उसमें निमज्जित कर दिया । तदनन्तर श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजने श्रीश्रीलगुरुपादपद्मकी महिमाका वर्णन करते हुए सुसिद्धान्तपूर्ण एक सुन्दर भाषण दिया ।

दो-पहरमें विविध प्रकारके पत्र-पुष्प, और सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित श्रीश्रीसमाधि-मंदिरमें पुष्पाञ्जलि एवं आरतिके पश्चात् उपस्थित वैष्णवों तथा श्रद्धालु १००० व्यक्तियोंको महाप्रसाद सेवन कराया गया । इस विरह-महोत्सवमें श्रीनवद्वीप-मण्डलके लगभग समस्त गौड़ीय मठोंके पूजनीय सारस्वत वैष्णवगण—विशेषतः परमाराध्यतम श्रीलगुरुपादपद्मके सतीर्थ—(गुरुभ्राता) वृन्द कृपा-पूर्वक सम्मिलित हुए थे ।

शामको मठस्थ श्रीहरिकीर्तन नाट्यमंदिरमें एक महती विरह-सभाका आयोजन किया गया । इसमें प्रपूज्यचरण परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद् भक्ति-रक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीने सभापतिका आसन अलंकृत किया तथा श्रीयुत आशुतोष सिद्धान्त-स्मृतितीर्थ महोदयने प्रधान

अतिथिका। प्रपूज्यचरण सभापति महोदय, माननीय प्रधान अतिथि महोदय एवं समितिके वर्तमान आचार्य महाराजजीने अपने-अपने विस्तृत भाषणमें परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवकी अलौकिक गुण-महिमा और अतिमर्त्य चरित्रके सम्बन्धमें गंभीर एवं मर्मस्पर्शी भाषण प्रदान किये। सभाके उपसंहारमें समितिके सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने उपस्थित सबके प्रति यथायोग्य कृतज्ञता एवं धन्यवाद प्रकाश किया तथा श्रीगुरु-तत्त्वके सम्बन्धमें संक्षिप्त भाषण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् महामंत्र कीर्तनके पश्चात् सभाका कार्य समाप्त हुआ।

—निजस्व-संवाददाता

(ख) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीधाम मथुरामें—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें २४ अक्टूबर, शुक्रवारको विरहोत्सवका अधिवास-संकीर्त्तन महोत्सव हुआ।

श्रीविरह-तिथिके दिन ब्राह्म-मूहूर्त्तमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधा-विनोदबिहारीजीकी मंगलारात्रिकके पश्चात् प्रातःकालमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त नारायण महाराजकी अध्यक्षतामें श्रीमंगलाचरण, श्रीगुरुवन्दना, गुरु-परम्परा, गुर्वष्टक, श्रीलप्रभुपाद-एकादशकम्, वैष्णव-वन्दना, पञ्चतत्त्व, एवं श्रीरूपानुग वैष्णव महाजन-पदावली—गुरुदेव! कृपाबिन्दु दिया, श्रीगुरुचरणपद्म केवल भकतिसद्म, जे आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर, गोरापहुँ ना भजिया मैनू, श्रीरूप-मञ्जरीपद सेइ मोर सम्पद, एइ बार करुणा कर वैष्णव गोसाईं, आदि तथा श्रीमहामंत्रका कीर्तन हुआ।

तदनन्तर त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मके अप्राकृत जीवन-चरित्रके विविध वैशिष्ट्यों तथा उनकी शिक्षाओंके विषयमें अति हृदय-ग्राही भाषणद्वारा उनके श्रीचरणकमलों श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। तदुपरान्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राध्यान्ती महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज, श्रीपाद कुंजबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद कृष्णस्वामी ब्रह्मचारी, श्रीशेषशायी ब्रह्मचारी आदि श्रीगुरु-सेवकोंने विरहसूचक महाजन पदावली एवं महामंत्र कीर्तन किया।

लगभग १०॥बजे पूर्वाह्णके समय मथुरा और ब्रजमण्डलके विभिन्न स्थानोंसे वैष्णवगण एवं ब्रजवासियोंके पधारने पर नाट्य-मंदिरमें विरह-सभाका अधिवेशन प्रपूज्यपाद परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराजके सभापतित्वमें आरंभ हुआ। इसमें श्रीमंगलाचरण,

श्रीगुरु-वन्दना एवं विरहसूचक वैष्णव महाजन पदावलियोंके कीर्तनके पश्चात् प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्ति प्रमोदपुरी महाराज, प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिविलास भारती महाराज, प्रपूज्यचरण श्रीभक्ति-विकाश हृषिकेश महाराज और प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिसौध आश्रम महाराज आदि प्रपूज्य त्रिदण्डिचरणोंने नित्यलीला-प्रविष्ट १०८ श्रीश्रील आचार्य केशरीके अतिमर्त्य जीवन-चरित्रके विविध वैशिष्ट्योंके सम्बन्धमें अत्यन्त गंभीर और मर्मस्पर्शी विचारोंको व्यक्त करते हुए श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराजने श्रील गुरुपादपद्मकी गुरुनिष्ठा, शुद्धाभक्तिके निर्भीक प्रचार, स्पष्टवादिता, भक्तिविरुद्ध मतवादसमूह (विशेषतः मायावाद) की प्रबल खण्डनकारिता आदि वैशिष्ट्योंका अश्रुपूर्ण नेत्रों तथा गद्गद् वाणीसे बोलते हुए सारे श्रोताओंको विरह सागरमें निमज्जित कर दिया। पूज्यपाद भारती महाराज तथा पूज्यपाद हृषिकेश महाराजने वज्रगंभीर स्वरसे तदीय गुरुनिष्ठा, प्रकाण्ड पांडित्य एवं विशेष रूपसे पाषण्ड-दलन आदि वैशिष्ट्योंके विषयमें भाषण दिया। पूज्यपाद सार महाराजने कुलिया नवद्वीप शहरमें श्रील प्रभुपादके प्रति वहाँके पाषण्डियोंद्वारा भीषण अत्याचारकी घटनाका उल्लेख करते हुए उस समय इन महापुरुषने अपने जीवनकी तनिक भी परवाह न करते हुए जिस प्रकारसे निर्भीक रूपमें श्रील प्रभुपादकी सेवा की थी, उसे बतलाकर उनकी अतुलनीय गुरुसेवा एवं साहसका परिचय प्रदान किया। पूज्यपाद आश्रम महाराजने उनकी अद्भुत संगठन शक्ति, वाग्मिता, युक्तिसंगत स्पष्टवादिता, विपत्तिके समय धैर्य, अनुगतजनोंके प्रति स्नेह और वात्सल्य भाव, श्रद्धालु जनोंको हरिकथा श्रवण कराकर परमार्थके पथ-पर अग्रसर कराना आदि विविध वैशिष्ट्योंको अपनी स्वयंकी अनुभूतियोंके आधार पर व्यक्त करते हुए उनके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। भाषणके अन्तमें उन्होंने यह भी कहा कि मुझपर उन्होंने जिस प्रकारसे अहैतुकी कृपा की है, उसके लिये मैं इन महापुरुषका चिरऋणी हूँ।

सबके अन्तमें समितिके उप-सभापति त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने संक्षेपमें श्रील गुरुपादपद्मकी महिमाका वर्णन करके उपस्थित त्रिदण्डिचरणों, समस्त वैष्णवजनों तथा व्रजवासियोंके प्रति इस विरह-महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश की। विरह-सभाके पश्चात् उपस्थित त्रिदण्डिचरणों, वैष्णवों और सभी गुरु-सेवकोंने नित्यलीला प्रविष्ट श्रील आचार्यकेशरीके वासभवन (शयन-कक्ष) में विचित्र प्रकारके अति सुगन्धित पुष्पमालाओं तथा रंग-बिरंगे वस्त्रोंद्वारा सुसज्जित तदीय आलेख्यार्चा मूर्तिके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। उसके पश्चात् श्रीविग्रहों और श्रीलगुरुपादपद्मके भोग-राग और आरतीके पश्चात् उपस्थित वैष्णव और व्रजवासी—लगभग ४०० व्यक्तियों सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया। त्रिदण्डिचरणोंको सचन्दन माला द्वारा विभूषित किया गया।

इस विरह-महोत्सवमें योगदान करने वाले निम्नलिखित प्रपूज्य वैष्णवों—परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार जाजावर महाराज, परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज, परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्ति सौरभ भक्तिसार महाराज, परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्ति विलास भारती महाराज, परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्तिविकाश हृषिकेश महाराज, परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्तिसौध आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज, श्रीमद् गुरुदास बाबाजी महाराज, श्रीमद् गोविन्ददास बाबाजी महाराज, श्रीपाद नारायण दासाधिकारी 'भक्ति सुधाकर' (मुखर्जी महाशय), श्रीमद्भक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज, श्रीमद्भक्तिप्रकाश पुरी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त राध्यान्ति महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज आदिके नाम उल्लेखयोग्य हैं।

शामके ७ बजे संध्यारति और कीर्तनके पश्चात् रात्रिकालमें पुनः विरह सभाका अधिवेशन त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। इसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राध्यान्ती महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज, श्रीपाद कुंजबिहारीदास ब्रह्मचारी तथा श्रीपाद कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मके सम्बन्धमें अपनी-अपनी स्मृतियों और उनकी गुण-महिमाका वर्णन करते हुए श्रीश्रीगुरुपादपद्मके विरहको श्रोताओंके मानस पटलपर अंकित कर दिया। सभाके अन्तमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने भाषणके माध्यमसे कहा कि विरह और मिलन दोनों एक ही तात्पर्यपर हैं। यह विरह-तिथि लौकिक-जगतमें वर्षमें एक बार आविभूत होकर गुरु-सेवकोंको अपनी सेवाका पुनरावलोकन करनेका सुवअसर प्रदान करती है तथा आचार्य केशरीके प्रदर्शित और आचरित भक्तिमार्ग पर अग्रसर होनेकी प्रेरणा प्रदान करती है। यह विरहोत्सव भक्तिजीवनका वह प्रकाश-स्तंभ है, जो घोर अन्धकार और विपत्तियोंमें भी मार्ग-दर्शन कराता हुआ पथ-भ्रष्ट नहीं होने देता। अन्तमें 'श्रीरूप मंजरी पद सेई मोर संपद' तथा हरिनाम महामंत्र संकीर्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

प्रचार-प्रसङ्ग

[क] श्रीअन्नकूट महोत्सव—

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २४ कार्त्तिक, १० नवम्बर, सोमवार शुक्ल-प्रतिपदा तिथिमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ और सभी शाखा-मठोंमें श्रीगोवर्द्धनजी की पूजा एवं श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी का अन्नकूट-महोत्सव विशेष समारोहपूर्वक मनाये गये हैं।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें विशेषकर यह उत्सव विशेष उत्साह और प्रीतिके साथ प्रतिवर्ष ही मनाया जाता है। उक्त दिवस वहाँ श्रीसमितिके नवाचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि-स्वामी पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजी और श्रीसमितिके सहकारी कार्य सम्पादक (Assistant Secretary) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज आदि आदरणीय वैष्णवगण भी पश्चिमोत्तर भारतकी परिक्रमाके उपलक्षमें यात्रियोंके साथ उपस्थित थे। उक्त दिवस श्रीविग्रहोंकी मंगलारतिके पश्चात् मंगलाचरण, श्रीगुरु-वन्दना एवं वैष्णव महाजन-पदावली आदिके कीर्त्तन होने पर पूज्यवाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीदामोदराष्टकं के अन्तिम श्लोक की बड़ी ही सरस एवं सुन्दर व्याख्या की। तदनन्तर कीर्त्तन एवं श्रीतुलसी-परिक्रमाके पश्चात् समस्त वैष्णववृन्द श्रीअन्नकूट-महोत्सवके विभिन्न प्रकारके सेवा-कार्योंमें तत्पर हो गये। नाट्य-मन्दिरमें श्रीगोवर्द्धनजीकी अर्चा-मूर्त्ति सुसज्जित की गई। उसके चारों ओर श्रीगिरि-राज गोवर्द्धन एवं उनके चारों ओर वहाँ के दृश्य अङ्कित किये गये। लगभग १० बजे दिनमें गौ एवं श्रीगोवर्द्धनजी की पूजा सम्पन्न होने पर ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत तथा श्रीचैतन्य-चरितामृतसे श्री-गोवर्द्धन-पूजा और श्रीअन्नकूट-प्रसङ्गका पारायण दोपहर १२ बजे तक चलता रहा। इसी बीच ही श्रीमान हरिसाधन ब्रह्मचारीके देखभालमें श्रीमान कुंजबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीमान शेषशायी ब्रह्म-चारी, श्रीमान निकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीमान लक्ष्मण ब्रह्मचारी, श्रीपाद रासबिहारी व्रजवासी आदि मठवासियोंने लगभग एक सौ पचास प्रकारके सुस्वादु भोज्यपदार्थ एवं व्यञ्जनादि प्रस्तुत कर दिये। १२बजे करीब श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-गान्धर्विका गिरिधारी-श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीका महासमा-रोहपूर्वक विराट संकीर्त्तनके साथ अन्नकूटका भोगराग और मध्याह्न-भोगारति सुसम्पन्न होनेपर उपस्थित लगभग ५०० श्रद्धालु सज्जनोंको महाप्रसाद सेवन कराया गया। शामको संध्यारति और

कीर्त्तनके पश्चात् रात्रिकालमें परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रीमद्भागवतकी बड़ी ही सुन्दर एवं मार्मिक व्याख्या की। श्रीमद्भागवत-पाठके समाप्त होनेके साथ-साथ सुमधुर स्वरसे महाजन-पदावली और 'हरे कृष्ण' महामंत्रके कीर्त्तन होने पर उस दिनकी सभा समाप्त हुई।

[ख] परमाराध्यतम श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका तिरोभाव-महोत्सव —

गत ४ अग्रहायण, २० नवम्बर, बृहस्पतिवार, श्रीउत्थान-एकादशीके दिन परमाराध्यतम श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव-तिथि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठों एवं प्रचार केन्द्रोंमें उत्साहपूर्वक मनायी गयी। शामको आयोजित विशेष विरह-सभामें श्रीभागवत-पत्रिकाके माननीय सम्पादक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राध्यान्ती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्द्वती महाराज तथा श्रीपाद कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रील बाबाजी महाराजके अप्राकृत वैराग्यमय जीवन और शिक्षाओंके ऊपर बड़े ही मार्मिक रूपसे प्रकाश डाला।

[ग] चातुर्मास्य-व्रत एवं कार्त्तिक-व्रत, उर्ज्जव्रत या दामोदर-व्रत का समापन उत्सव—

गत ७ अग्रहायण, २३ नवम्बर, रविवार, हैमन्तिक रासपूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें श्रीचातुर्मास्य-व्रत एवं श्रीकार्त्तिक-व्रत या श्रीदामोदर-व्रत (नियम-सेवा) का समापन उत्सव मनाया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें चातुर्मास्य व्रत एवं तदन्तर्गत श्रीकार्तिक-व्रत पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति नियमपूर्वक मनाया गया है। विशेषकर कार्त्तिक मासमें श्रीश्रीराधादामोदरजीकी प्रीतिके उद्देश्यसे नाना-प्रकारके भोगोंका त्याग तथा विविध प्रकारके भक्त्यंगोंका पालन किया गया है। प्रतिदिन नियमित रूप से श्रीमंगलारति, कीर्त्तन, श्रीदामोदराष्टकं, श्रीशिक्षाष्टकं तथा श्रीउपदेशामृतं की पाठ-व्याख्या, श्रीश्रीअर्चामूर्तिका अर्चन और भोगराग, श्रीधाम-परिक्रमा, अपराह्णमें 'श्रीभजन-रहस्यका पाठ', पुनः संध्यारति, वैष्णव-महाजन पदावली कीर्त्तन तथा श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्य-चरितामृत तथा श्रीचैतन्यभागवत आदिका पाठ होता था।

व्रत-समापनके दिन नियमित भक्त्यङ्गोंके पालनके अतिरिक्त श्रीविग्रहोंके विशेष अर्चन-पूजन और भोग रागके पश्चात् उपस्थित वैष्णवोंको श्रीमहाप्रसाद सेवन कराकर व्रत-समापन किया गया।

सवेरे और रातमें त्रिदण्डिस्वामी पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने शिक्षाष्टकके अन्तिम तीन श्लोकोंका सरस एवं सुन्दर पाठ कर श्रोताओंको मुग्ध कर दिया। अन्तमें श्रीचातुर्मास्य-व्रत एवं श्रीदामोदर-व्रत पालनका रहस्य और उनके माहात्म्यका भी वर्णन किया। वैष्णव पदावलियों और महामंत्र-कीर्त्तनके पश्चात् सभा समाप्त हुई।

[घ] पश्चिमोत्तर भारतके तीर्थ-दर्शन—

इस वर्ष कार्त्तिक माहमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तत्त्वावधानमें पश्चिमोत्तर भारतके तीर्थोंके दर्शनोंकी व्यवस्था हुई थी। इसके अनुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज और श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारीजीकी अध्यक्षतामें परिक्रमा पार्टी गत ता० २६-१०-६६ ई० को हावड़ा (कलकत्ता) स्टेशनसे रातके ६बजे बम्बई मेलद्वारा यात्रा करके गया तथा प्रयाग होकर ता० ५-११-६६ ई० को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुई। यहाँ पर ता० ६ नवम्बर से ११ नवम्बरतक व्रजमण्डलके मथुरा, मधुवन, श्रीगोवर्धन, राधाकुण्ड, बर्षाना, सांकेत, नन्दगाँव, वृन्दावन और गोकुल-महावन आदि कृष्णलीला स्थलियोंकी परिक्रमा और दर्शन करके करौलीमें श्रीमदनमोहनजी, जयपुरमें श्रीगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीराधादामोदरजी, श्रीराधाविनोदजी, श्रीराधामाधवजी तथा गलतागद्दीका दर्शन करती हुई क्रमशः पुष्कर, सावित्री, नाथद्वारा, पोरबन्दर, सुदामापुरी, मूल-द्वारका, गोमती-द्वारका, बेट-द्वारका, गोपी-तालाब, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मणझूला, नैमिषारण्य, अयोध्या और वाराणसी का दर्शन करके गत ५ दिसम्बरको हावड़ा पहुँचकर यात्रीगण अपने-अपने घरोंको लौट गये हैं। श्रीसमितिद्वारा की गई सुन्दर व्यवस्थासे यात्रीवृन्द बड़े प्रभावित हुए तथा उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। हावड़ासे व्रजमण्डल तथा जयपुर तककी परिक्रमामें समितिके नवाचार्य पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज भी उपस्थित थे।

—श्रीकुंजबिहारी ब्रह्मचारी

श्री व्यास-पूजाका निमन्त्रण

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१४ दिसम्बर १९७०

नारायणं नमस्कृत्य नरंञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्त विद्याश्रितेषु—

आगामी १२ फाल्गुन, २४ फरवरी, मंगलवार, माघी कृष्णा तृतीयाको श्री व्यासाभिन्न नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस स्वामी **१०८ श्रीश्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी** आविर्भाव-तिथिसे लेकर १४ फाल्गुन, २६ फरवरी वृहस्पतिवार, माघी कृष्णा पंचमीको नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद आचार्य-चूड़ामणि **१०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** की आविर्भाव तिथि तक—इन दोनों तिथियोंकी पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें विशेषकर मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीप, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ामें तीन दिनोंतक **श्रीश्रीव्यासपूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पंचक** अर्थात् श्रीकृष्ण-पंचक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरु-पंचक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रतिदिन हरि-कीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तव-पाठ, श्री हरिगुरु-वैष्णव-संश्रय और अंजलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बांधवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे। इस महदनुष्ठान में योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवा-कार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासक्यानुगत्याभिलाषी—

"सम्यवृन्द"

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—मंगलवारको श्री व्यास-पंचकादि, परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवके पादपद्मों में पुष्पांजलि-प्रदान, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण। बुधवारको श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन। वृहस्पतिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अंजलि-प्रदान, प्रबन्धादि-पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना।